“MAA” OMWATI COLLEGE OF EDUCATION HASSANPUR (PALWAL)

AFFILIATED CRS UNIVERSITY, JIND

B.ED – 1ST YEAR (2021-22)

NOTES PAPER- IV & V

PEDAGOGY OF BIOLOGICAL SCIENCE

MAA OMWATI EDUCATION TRUST

DELHI

E-mail: moce.principal@maaomwati.com

1

जीव विज्ञान का अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र, इतिहास व पाठ्यक्रम अन्त:सम्बन्ध

[Meaning, Nature,Scope, History and Interdisciplinary Linkage of Biological Science]

1. जीव विज्ञान क्या है?
(What is Life Science?)

अथवा

जीव विज्ञान से आप क्या समझते हैं? परिभाषित कीजिये।
(What do you mean by Life Science? Define.)

उत्तर–विज्ञान क्या है? इस विषय से सम्बन्धित अनेक परिभाषाएं दी गई हैं। लेकिन एक भी परिभाषा सर्वत्र मान्यता प्राप्त नहीं है। वास्तव में, विज्ञान अन्वेषणों से प्राप्त अनुभवों का क्रमबद्ध ज्ञान है। विज्ञान (Science) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द "Scientia" = ज्ञान (Knowledge) से हुई है।

प्राकृतिक तथ्यों पर आधारित विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान कहते हैं। सामाजिक क्रियाओं से सम्बन्धित विज्ञान को सामाजिक विज्ञान कहते हैं।

प्रकृति विज्ञान की दो मुख्य शाखायें हैं–भौतिक विज्ञान (Physical Science) और जीव-विज्ञान (Life Science)। भौतिक विज्ञान में प्रकृति के निर्जीव पदार्थों का अध्ययन किया जाता है, इसमें भौतिक, रसायन-शास्त्र, भू-गर्भ विज्ञान आदि विषय आते हैं। जीव-विज्ञान में सजीव पदार्थ (जन्तु तथा पौधों) का अध्ययन किया जाता है। अतः जीवधारियों से सम्बन्धित विज्ञान को **जीव-विज्ञान** (Biology : Bio = Life; Logos = Science) कहा जाता है। जीव-विज्ञान की दो प्रमुख शाखाएं हैं–

(1) जन्तु विज्ञान (Zoology);
(2) वनस्पति विज्ञान (Botany)।

पिछली शताब्दी तक विज्ञान को स्कूल पाठ्यक्रम में उचित स्थान प्राप्त नहीं था। विज्ञान मानव सभ्यता के विकास के लिए अत्यन्त सहायक है, फिर भी इसे पाठ्यक्रम में नीचा स्थान प्राप्त है। अन्य विषयों की भांति विज्ञान भी छात्रों को विकसित करने तथा राष्ट्रीय विकास में सहायता करता है। इसमें सभी प्रकार का विकास सम्भव है। हमारी सभी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति पौधों से होती है।

हमारे देश में जीव-विज्ञान के अध्ययन को कम महत्त्व दिया गया। परन्तु आज जीव-विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों को समझते हुए उसे प्रारम्भिक एवं माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य विषय के रूप में और ऊंची कक्षाओं में वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। जीव-विज्ञान के अध्ययन से हम प्रकृति के सभी जीवों और पौधों के जीवन-चक्र का अध्ययन करते हैं। इससे हमें मानव जीवन के लिए उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त होता

है। जीव-विज्ञान के अध्ययन से कृषि में, रोगों से रोकथाम में तथा अनेक हानिकारक और असाध्य रोगों के निदान के लिए ज्ञान प्राप्त होता है।

वनस्पति विज्ञान के अध्ययन से हमें जीवन में रहन-सहन के स्तर को विकसित करने में सहायता मिलती है। हमारी मूलभूत आवश्यकताएं वनस्पति विज्ञान की उपलब्धियों पर ही निर्भर है। आयुर्वेद का तो आधार ही वनस्पति जगत् में उपलब्ध वनस्पतियाँ हैं। जीव-विज्ञान विभिन्न व्यवसायों के लिए भी आधार प्रदान करता है। डॉक्टर तथा उनके सहायक जीव-विज्ञान की शिक्षा से लाभ उठाते हैं। जीव-विज्ञान के अध्ययन ने मानव के अनेक अन्धविश्वासों को समूल नष्ट कर दिया है।

जीव-विज्ञान का महत्त्व
(Importance of Life Science)

इस प्रकार, जीव-विज्ञान का मानव जीवन में अत्यधिक महत्त्व है।

जीव-विज्ञान की उपयोगिता के आधार पर इसे पाठ्यक्रम में विशेष स्थान दिया गया है। बहुत से स्कूलों में तो माध्यमिक कक्षा में इसे अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाता है।

1964-66 में कोठारी आयोग ने स्कूल पाठ्यक्रम में भौतिक विज्ञान और जीव-विज्ञान को सम्मिलित करने का समर्थन किया है।

आज विज्ञान ने पाठ्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है, फिर भी इसे अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित करने में पहले इसके वैदिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सौन्दर्यात्मक एवं उपयोगिता के दृष्टिकोण का मूल्यांकन करना उचित होगा।

परिभाषाएँ (Definitions)—जीव विज्ञान शिक्षण को अनेक विद्वानों ने अपने-अपने शब्दों में परिभाषित किया है, जो कि निम्नलिखित हैं—

1. **आइन्सटीन** के अनुसार, **"हमारी ज्ञान की अनुभूतियों की अस्त-व्यस्त विभिन्नताओं को तर्कपूर्ण एक रूप प्रणाली बनाने के प्रयास को विज्ञान कहा जा सकता है।"**
   ("Science is an attempt to make the chaotic diversities of our sense experiences correspond to logically uniform system of thoughts.")
2. **फ्रेडरिक एवं फिट्जपैट्रिक**—"जीव विज्ञान अनुभवजन्य अवलोकनों की एक संचयी एवं अन्तहीन क्रमबद्धता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यय एवं सिद्धान्तों का निर्माण होता है। प्रत्यय व सिद्धान्त दोनों ही भावी अनुभवजन्य अवलोकन के आधार पर पुनः परिवर्तन लिये जा सकते हैं
   ("Science is a cumulative and endless series of empirical observations which result in the formation of concepts and theories, with both concept and theories being subject to modification in the light of further empirical observation. Science is both a body of knowledge and the process of enquiring it.")

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि—

1. जीव विज्ञान के दो पक्षों के माध्यम से जीव विज्ञान की प्रकृति को जाना जाता है। यह दोनों पक्ष निम्नलिखित हैं—
   (a) पहला पक्ष स्थिर पक्ष है, जो कि सिद्धान्तों पर आधारित है।
   (b) दूसरा पक्ष गतिशील पक्ष है, जो कि विज्ञान की प्रायोगिक प्रक्रिया से संबंध रखता है।

इस प्रकार विज्ञान की प्रकृति को दो रूपों में बाँटा गया है—

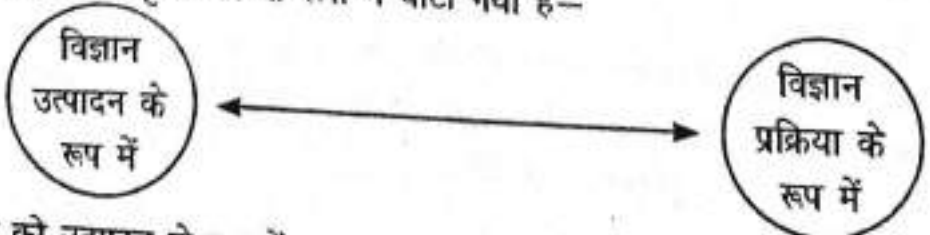

1. विज्ञान को उत्पादन के रूप में, जाना जाता हैं। अर्थात् यह उत्पादन कार्यों हेतु लाभकारी है।

2. विज्ञान प्रक्रिया के रूप में जीव विज्ञान में उत्पादन पक्ष के द्वारा विज्ञान के निश्चित तथ्य, सिद्धान्त, मान्यताओं व विचारधाराओं पर ध्यान दिया जाता है।
3. जीव विज्ञान का एक पक्ष गतिशील व दूसरा पक्ष स्थिर रहता है। गतिशील पक्ष, स्थिर पक्ष को जीव विज्ञान की एक क्रिया मानता है।
4. जीव विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा होती है, जो कि जीवित पौधों व जन्तुओं के अध्ययन से संबंध रखती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीव विज्ञान ज्ञान की यह शाखा है, जो समाज की खुशहाली तथा विकास पर प्रभाव डालती है।

◆◆◆

2. आधुनिक जीवन में जीव विज्ञान अध्ययन की क्या भूमिका है?
(What is the role of teaching of life science in modern life?)

अथवा

जीव विज्ञान का अध्ययन क्यों आवश्यक है?
(What is the need of Life Science Teaching?)

अथवा

"जीव विज्ञान की प्रकृति" पर टिप्पणी कीजिये।
(Write a note on the "Nature of Life Science".)

उत्तर–जीव-विज्ञान हमारे दैनिक जीवन के कार्यों में अहम भूमिका रखता है। इसके अध्ययन के अनेक लाभ हैं। जीव-विज्ञान के अध्ययन से जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें जैसे–रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के लिए अनेक प्रायोगिक विषयों का विकास हुआ। जैसे–कृषि, चिकित्सा, उद्यान विज्ञान आदि।

जीव-विज्ञान के अध्ययन से हमें जीवों तथा वनस्पतियों के जीवन चक्र का ज्ञान होता है। मानव जीवन के लिए इनकी उपयोगिता तथा इनसे होने वाली हानियों से भी परिचित हो जाते हैं। विषैले कीट-पतंगों तथा पौधों द्वारा होने वाली हानियों का ज्ञान होने पर हम अपना बचाव कर सकते हैं।

पौधे मनुष्य के आहार का मुख्य स्रोत हैं। सभी पेय पदार्थ, मसालें, वसा और तेल पौधों से ही प्राप्त होते हैं। बीड़ी, पान, कत्था व तम्बाकू भी पौधों से ही प्राप्त होता है। पौधों से हमें ईंधन, कोयला, रबड़, गोंद, कार्क, आदि बहुत उपयोगी पदार्थ भी प्राप्त होते हैं। मनुष्य को शरीर ढकने के लिए वस्त्र भी पौधों से ही प्राप्त होते हैं।

प्राचीन काल से ही मनुष्य अपने रोगों के निदान के लिए पौधों पर निर्भर रहा है। पौधों का औषधीय महत्त्व बहुत है। अधिकांश कवक व जीवाणु मृतजीवी होते हैं, जो प्राकृतिक अपमार्जक का कार्य करते हैं।

प्रदूषण को रोकने में तथा प्राणवायु ऑक्सीजन प्रदान करने के लिए पौधों के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। ये प्रकृति में संतुलन बनाये रखते हैं।

जन्तु विज्ञान के अध्ययन से हमें अपने शरीर की रचना तथा कार्यविधि को समझने में सहायता मिलती है। रोगाणु उत्पन्न करने वाले जीवों की रचना, जीवन-वृत्त आदि का अध्ययन करने में इनसे सुरक्षा की जा सकती है। लाभदायक तथा हानिकारक कीटों का ज्ञान प्राप्त कर हम अपनी फसल की सुरक्षा कर सकते हैं।

जीव-विज्ञान अध्ययन से मानव में उस चेतना का विकास होता है जो सत्य के शुद्ध स्वरूप को जानने के लिए आवश्यक है। इससे हम अपने निरीक्षण में निष्पक्षता एवं अपने चारों ओर वातावरण के विषय में गहनता से देखना सीखते हैं। यह हमें संवेगों (Emotions) से प्रभावित निर्णय करने से बचाता है।

छात्रों को जीव-विज्ञान के साहित्य का अध्ययन, प्रकृति निरीक्षण के सिद्धान्त, जल-जीव संग्रहालय बनाना, बगीचा बनाना, विभिन्न पौधों एवं नमूनों को एकत्रित करना तथा उनको सुरक्षित रखने की तकनीकों से अवगत कराया जाता है। जीव-विज्ञान का अध्ययन विभिन्न व्यवसायों के लिए आधार प्रदान करता है। चिकित्सा विज्ञान, पशु विज्ञान, कीट विज्ञान, मत्स्य विज्ञान, दुग्ध विज्ञान, कृषि विज्ञान आदि।

इसके अतिरिक्त भी मानव के लिये जन्तु विज्ञान अध्ययन का बहुत अधिक महत्त्व है। आधुनिक जीवन में विकास के लिए जीव-विज्ञान का अध्ययन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह हमें जैव विकास सिद्धान्त, जीवोत्पत्ति सिद्धान्त, जीव सिद्धान्त, कोशिका सिद्धान्त, उपापचय का जीनिक नियंत्रण, विभेदक जीन क्रियाशीलता इत्यादि के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान से अवगत कराता है।

अतः जीव-विज्ञान का अध्ययन आधुनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है।

जीव विज्ञान की प्रकृति
(Nature of Life Science)

जीव विज्ञान एक विस्तृत तथा प्राचीन विज्ञान हैं। इसका इतिहास ग्रीक इतिहास से शुरू होता है। इसकी प्रकृति के विषय में चर्चा की जाये, तो इसमें निम्नलिखित गुणों का समावेश पाया जाता है–

1. संगठन (Organization)–जीव विज्ञान के क्षेत्र में प्रत्येक कार्य एक संगठित रूप में होता है। एक भाग अथवा अंग सदैव ही दूसरे अंग या भाग पर अपना प्रभाव डालता है व यह आपस में मिल-जुल कर संगठित कार्य करता है। इस संगठित कार्य को समझा जा सकता है तथा उसकी व्याख्या की जाती है।

2. गतिकता (Dynamism)–जीव विज्ञान में अध्ययन की जाने वाली वस्तुओं में जीवन पाया जाता है, जिसके कारण यह सदैव गतियुक्त होती है व यह परिवर्तनशील होती है। उनके इस परिवर्तन के कारण उनमें सदैव रुचि बनी रहती है।

3. सौन्दर्य सुग्राहिता (Aesthetic Senstivity)–जीव विज्ञान विषय के अन्तर्गत व्यक्ति को प्रकृति के सौन्दर्य की अनुभूति होती है। इसके बोध व अध्ययन से मनुष्य के भावों में भी स्फूर्ति उत्पन्न होती है व प्रकृति में सौन्दर्यात्मक अनुभूति का अनुभव होता है। इससे प्रकृति में अलग-अलग आकार, रंग, बनावट व रूप आदि के पशु-पक्षी तथा पौधों का निर्माण दिखाई देता है।

4. सम्पूर्णता (Wholeness)–इस क्रिया में पूर्ण जन्तु या पौधों के विषय में अध्ययन किया जाता है। इसमें शरीर व संस्थानों के कार्य में भिन्न-भिन्न अंग भाग लेते हैं, परन्तु संस्थान एक पूर्ण रूप में हमारे समझ आता है, तो यह गुण सिर्फ जीव विज्ञान की प्रकृति में ही पाया जाता है।

5. जीव विज्ञान आनुभविक का विज्ञान है (Biology is an empirical Science)–जीव विज्ञान के द्वारा किसी भी घटना को निरीक्षण व प्रयोग के आधार पर समझा जा सकता है, उसकी व्याख्या की जाती है। इसके ज्ञान का आधार हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं, जो कि वातावरण के सम्पर्क में आती हैं, व हमको ज्ञान प्रदान करती हैं। यही ज्ञान पाठ्य वस्तु के रूप में प्राप्त होती है, जिसको उत्पादन (Product) कहते हैं, व जिस वैज्ञानिक विधि द्वारा यह पाठ्य वस्तु प्राप्त होता है, उसे जीव विज्ञान की प्रक्रियां कहा जाता है। इस तरह से इसकी अपनी प्रक्रिया (Process) व अपना उत्पादन (Product) होता है।

6. विज्ञान की भाषा (Language of the Science)–जीव विज्ञान की स्वयं की भाषा होती है, जो कि अन्य विषयों से अलग होती है। इसके अपने अलग-अलग पद होते हैं। इसके अनेक प्रत्यय (Concepts) अन्य विषयों से अलग होते हैं जबकि–

(a) प्रत्यय (Concepts)
(b) प्रक्रियाएँ (Processes)
(c) तथ्य (Facts)
(d) परिभाषाएँ (Definitions)
(e) संबंध (Relationship)
(f) संकेत (Signs)

इसमें प्रत्येक विषय के अलग-अलग उद्देश्य होते हैं।

7. कारण प्रभाव में संबंध (Relationship between cause and effect)–इस विषय में सिर्फ जन्तु तथा पौधों के विषय में अध्ययन किया जाता है। यह जीवित आधार होते हैं। जीव विज्ञान

के क्षेत्र में प्रत्येक घटना व प्रभाव का कोई न कोई कारण होता है। जैसे पौधों की पत्तियों का पीलापन, शारीरिक कमजोरी होना आदि।

8. सजीवों से संबंध (Relation with the livings)—जीव विज्ञान के क्षेत्र में प्रत्येक घटना अथवा प्रभाव का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। जैसे कि पौधों की पत्तियों का पीला, सफेद या हरा रहना आदि बातों का संबंध जीवितता से लगाया जाता है।

◆◆◆

जीव विज्ञान का क्षेत्र व पाठ्यक्रम अंतःसंबंध (Scope of biology and interdisciplinary Linkage)

S. जीव विज्ञान का क्षेत्र व पाठ्यक्रम अंतःसंबंध बताइये। (Explain the scope and interdisciplinary linkage of Biological Science.)

उत्तर–विज्ञान में विषय वस्तु धारण व प्रक्रिया दोनों का ही अध्ययन करते हैं, अतः विज्ञान विषय वस्तु व प्रक्रिया दोनों ही हैं। विज्ञान पढ़ने के अनेक कारण हैं। यह कारण निम्नलिखित हैं–

1. यह दैनिक जीवन हेतु उपयोगी है।
2. इसका क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है।
3. विज्ञान का सामाजिक व नैतिक मूल्य है।
4. विज्ञान द्वारा वैज्ञानिक विधि से अपनी समस्याओं का समाधान खोजा जाता है।
5. विज्ञान द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है तथा हमारा स्वभाव वैज्ञानिक हो जाता है।

जीवन विज्ञान का क्षेत्र *(Scope of Biology)*

1. विज्ञान मूलतः प्राकृतिक संसार के अंवेषण के विषय में संबंध रखता है। विज्ञान के कई विषय हैं, परंतु मूल विषय तीन हैं। ये मूल विषय भौतिकी, रसायन व जीव-विज्ञान या जैविकी के नाम से जाने जाते हैं। जीव-विज्ञान जीवित वस्तुओं से संबंधित है और भौतिकी व रसायन भौतिक विज्ञान से संबंधित विषय हैं।
2. मनुष्य स्वभाव से जिज्ञासु प्राणी है। यह अपने प्राकृतिक संसार, जिसमें वह रहता है, को समझने के लिए अभिप्रेरित होता रहता है। वह इस संसार का संचालन भी करना चाहता है।
3. आज का युग एक वैज्ञानिक युग है। हम वैज्ञानिक व तकनीकी युग में रह रहे हैं। कोई भी नागरिक बिना वैज्ञानिक ज्ञान के इस युग में अपने जीवन को सुचारु रूप से नहीं जी सकता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है। इसके लिए आवश्यक है कि उसे स्वच्छता का ज्ञान हो। इसी प्रकार विद्युत उपकरणों से कार्य करना व अन्य घरेलू वस्तुओं के उपयोग के लिए व्यक्ति विशेष को विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है। आज हमारा पूरा जीवन ही वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है।
4. घर से बाहर भी विज्ञान हमारे जीवन को प्रभावित करता है। चाहे वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से संबंधित है या बीमारी से लड़ने या बीमारी से बचाव का ज्ञान हो। मनोरंजन के क्षेत्र में भी विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है। अधिक उपज के लिए बीज और खाद्य की आवश्यकता है या कृषि से संबंधित और अधिक ज्ञान की आवश्यकता है। विज्ञान ही इन सभी जरूरतों को पूरा करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत है। यह दैनिक जीवन से लेकर आकाश में नक्षत्रों तक फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त विज्ञान अपने छात्र के लिए रोजगार के अवसर प्रदान

करता है। यह उसकी सोचने-समझने, विचार करने, तर्क करने, सत्य बोलने, दूसरों के प्रति सम्मान करने की आदतों का विकास करता है। अतः विज्ञान का क्षेत्र विस्तृत है और प्रत्येक नागरिक को इसे पढ़ना व सिखाना आवश्यक है। अतः विज्ञान के ज्ञान की नींव प्राथमिक स्तर पर ही डालनी आवश्यक है।

जीव विज्ञान का पाठ्यक्रम अन्तःसंबंध *(Interdisciplinary Linkage of biology)*

भारत में शैक्षणिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण का राष्ट्रीय परिषद (NCERT) के प्रयत्नों द्वारा ही विज्ञान को स्कूल स्तर पर आवश्यक विषय बना दिया गया। इस संदर्भ में कोठारी कमीशन ने कहा है–

कोठारी कमीशन (Kothari Commission 1964-66) के अनुसार, **"हम विज्ञान को स्कूल पाठ्यक्रम में एक महत्वपूर्ण विषय बनाने हेतु आवश्यक बल देते हैं। अतएव, हम इस पक्ष में हैं कि विज्ञान एवं गणित को विद्यालय के प्रथम दस वर्षों में सामान्य शिक्षा के एक अंश के रूप में सभी छात्रों को आवश्यक आधार पर पढ़ाया जाए। इसके अतिरिक्त उच्च स्तर पर इन विषयों में विशेष कोर्स का प्रबंध किया जाए, विशेषकर उन छात्रों के लिए जो औसत योग्यता के ऊपर है।"**

("The commission stated that we lay great emphasis on making science one important element in the school curriculun. We therefore, recommand that science and mathematic should be taught on a fist pulsory bassy to all pupil as a poot of general education during the first ten years of schooling. In addition there should be provision of special courses in there subjects at the secondary stage, for students of have than average ability.")

1. विज्ञान की प्रगति में अपनी सांस्कृतिक विरासत को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए।
2. व्याख्यान कक्ष सहित प्रयोगशालाओं का प्रावधान कराया जाए।
3. प्रतिभाशाली छात्रों के लिए गहन पाठ्यक्रम का प्रावधान कुछ चुने हुए विशिष्ट विद्यालयों में कराया जाए।
4. विज्ञान को एक अनुशासन के रूप में लिया जाना चाहिए एवं उसमें प्रायोगिक परियोजनाओं पर जोर दिया जाना चाहिए।
5. विज्ञान शिक्षण की आधुनिकतम विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। अध्यापकों के लिए निर्देशन पुस्तिकाओं का प्रबंध हो तथा पाठ्यक्रम को लचीला बनाया जाना चाहिए।
6. विज्ञान एवं गणित का कक्षा दस तक एक अनिवार्य विषय की तरह पाठ्यक्रम में समावेश।
7. प्राथमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण छात्रों की पृष्ठभूमि के अनुरूप होना चाहिए। रोमन अक्षरों को कक्षा चार में पढ़ाया जाए। मानचित्र, चार्ट एवं सांख्यिकी परीक्षणों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। उसके पश्चात् ज्ञानार्जन एवं तार्किक चिंतन पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए, जिससे छात्र स्वयं निष्कर्ष निकाल सके एवं निर्णय ले सकें।
8. विश्वविद्यालय स्तर पर अधिक सुविधाएँ अनुसंधान हेतु उपलब्ध कराई जानी चाहिए। इसके लिए State Institute for Science Education की स्थापना भी की गई, जिसका प्रमुख कार्य अध्यापकों को विज्ञान शिक्षण के प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग देना है।

अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1972) UNESCO के अनुसार–अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1972 UNESCO के अनुसार (Diews of UNESCO International Commission on Education कोठारी आयोग की तरह यूनेस्को अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं–

"विज्ञान और तकनीकी किसी भी शिक्षा के ढांचे का महत्त्वपूर्ण भाग होने चाहिए। इन्हें बच्चों, युवकों तथा प्रौढ़ों के लिए निर्धारित शैक्षिक क्रियाओं में रखा जाना चाहिए ताकि सामाजिक तथा प्राकृतिक शक्तियों पर अधिकार प्राप्त करने में व्यक्ति की सहायता ली जा सके और वह स्वयं अपनी क्रियाओं में निपुणता प्राप्त कर सके तथा अंत में वह व्यक्ति को वैज्ञानिक सुझाव दे सकें ताकि वह विज्ञान का दास बने बिना इसका विकास कर सके।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992) (National Policy of Education) के अनुसार, "राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने स्कूल स्तर पर विज्ञान को आवश्यक विषय प्रमाणित किया है। उनके अनुसार विज्ञान की शिक्षा स्कूल से बाहर युवकों तथा प्रौढ़ लोगों को भी दी जा सकती है। नीति के अनुसार, विज्ञान को शिक्षा के अत्यधिक प्रसार हेतु वे सारे प्रयत्न किए जाएँगे जोकि अब तक औपचारिक शिक्षा के दायरे से बाहर रहे हैं।"

(Every effort will be made to extend science Education to the vast Numbers who have remained outside the pole of formal Education.)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् 1961 (National Council of Educational Research and Training 1961)–1961 में दिल्ली में NCERT की स्थापना की गई, जिसके साथ NIE भी संबंधित है। इसका प्रमुख कार्य शिक्षा में अनुसंधान एवं परीक्षा प्रणाली में सुधार लाना है। इसके अंतर्गत चार क्षेत्रीय महाविद्यालय (Regional Colleges) हैं, जिनमें अध्यापक प्रशिक्षण हेतु ग्रीष्म विद्यालय पत्राचार कोर्स (Summer School Cum Correspondence Courses) चलाए जाते हैं। NCERT जहाँ विभिन्न शिक्षा विभागों, शिक्षा मंत्रालय आदि की सहायता कर रही है वहीं वह अध्यापकों, छात्रों लेखकों, प्रकाशकों, अनुसंधानकर्ताओं एवं जन साधारण को भी शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों के विषय में सहयोग दे रही है। क्षेत्रीय महाविद्यालय (Regional Colleges) में अभी तक M.Sc. in Science Education का पाठ्यक्रम भी प्रारंभ किया गया है, जो माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

NCERT ने विज्ञान की प्रगति के लिए एक विज्ञान प्रतिभा की खोज संबंधी राष्ट्रीय योजना (National Science talent Search Programme) चलाई है।

जीव विज्ञान शिक्षण के प्रसार हेतु विभिन्न प्रदेशों में S.I.S.E. (State Institutes of Science Education) की स्थापना की गई, जिसके मुख्य उद्देश्य–

1. राष्ट्रीय विज्ञान कार्यक्रमों में भाग लेना आदि है।
2. जीव विज्ञान से संबंधित अनुसंधान करना।
3. विद्यालयों में निर्देशन सेवाएँ आरंभ करना।
4. जीव विज्ञान शिक्षण हेतु पाठ्य सामग्री का निर्माण करना।
5. कार्यरत विज्ञान शिक्षकों को विज्ञान की नवीन खोजों से परिचित कराना।

इस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति, नवीन विधियों की खोज व प्रयोग में निरंतर वृद्धि होती रहेगी।

◆◆◆

जीव विज्ञान की शाखाएँ (Branches of Biology)

4. जीव विज्ञान की मुख्य शाखाएँ कौन-सी हैं?
(What are the main branches of life science or Biology?)

उत्तर–जीव विज्ञान की शाखाएँ (Branches of Biology)–

क्रम सं.	विषय (Subject)	संबंधित अध्ययन (Related Study)
1.	उद्विकास (Evolution)	जीव जातियों के उद्भव एवं विभेदीकरण के इतिहास का अध्ययन
2.	वर्गिकी (Taxonomy)	जीव जातियों का नामकरण एवं वर्गीकरण

क्रम सं.	विषय (Subject)	संबंधित अध्ययन (Related Study)
3.	भ्रौणिकी (Embryology)	भ्रूणीय परिवर्धन का अध्ययन
4.	कार्यिकी (Physiology)	शरीर के विभिन्न भागों के कार्य एवं कार्य विधियों का अध्ययन
5.	अकारिकी (Morphology)	आकृति एवं रचना का अध्ययन
6.	पारिस्थितिकी (Ecology)	सजीव व निर्जीव वातावरण से जीवों के विविध संबंधों का अध्ययन
7.	मानव शास्त्र (Anthropology)	मानव जाति के सांस्कृतिक विकास का अध्ययन
8.	स्तनी विज्ञान (Mammalogy)	स्तनधारियों का अध्ययन
9.	पक्षी विज्ञान (Ornithology)	पक्षियों का अध्ययन
10.	सरीसृप विज्ञान (Herpetalogy)	उभयचरों व सरीसृपों का अध्ययन
11.	मत्स्य विज्ञान (Ichthyology)	मछलियों और मछली पालन का अध्ययन
12.	कीट शास्त्र (Entomology)	कीट पतंगों का अध्ययन
13.	हेलीमेन्थोलोजी (Helminthology)	परजीवी कृमियों का अध्ययन
14.	प्रोटोजोआ विज्ञान (Protozology)	प्रोटोजोआ का अध्ययन
15.	प्रतिरक्षण विज्ञान (Immunology)	संक्रमण के विरूद्ध के संबंध में जैव क्रियाएं
16.	जीव भौतिकी (Biophysics)	भौतिक सिद्धान्तों के सन्दर्भ में अध्ययन
17.	जीव रसायन (Biochemistry)	जीव शरीर की रासायनिक क्रिया
18.	आनुवंशिकता (Genetics)	जीवों के आनुवंशिकी लक्षणों और इनकी वंशगति का अध्ययन।

वनस्पति विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ (Main Branches of Botany)

क्रम सं.	विषय (Subject)	संबंधित अध्ययन (Related Study)
1.	पादप रोग विज्ञान (Plant Pathology)	पौधों के रोग के लक्षण, रोग कारक जीव तथा रोगों के नियन्त्रण का अध्ययन।
2.	पुरावनस्पति (Palaeobotany)	पौधे के जीवाश्मों का बनना, उनकी बाह्य तथा आन्तरिक संरचना का अध्ययन।
3.	वनस्पति भूगोल (Plant Geography)	पृथ्वी पर पौधों का वितरण तथा संबंधित कारणों का अध्ययन।
4.	आर्थिक वनस्पति (Economic Botany)	पौधों से प्राप्त विभिन्न उपयोगी वस्तुएँ और पदार्थ तथा इस प्रकार के पौधों का वितरण उन्हें उगाने की क्रियाओं आदि का अध्ययन।

5.	भेषजगुण विज्ञान (Pharmacology)	औषधियों के संबंध में अध्ययन तथा औषधियाँ बनाने की क्रियाओं का अध्ययन।
6.	भ्रूण विज्ञान (Embryology)	पौधों को जनन क्रिया के गुणांकों का बनना तथा युग्मनज का निर्माण तथा युग्मन से नवोद्‌भिद का बनना इत्यादि प्रक्रियाओं का अध्ययन।
7.	आकारिकी (Morphology)	पौधों तथा उनके विभिन्न अंगों के बाह्य आकार और रचना का अध्ययन।
8.	पारिस्थितिकी (Ecology)	जीवधारी तथा उसके वातावरण के बीच पारस्परिक संबंधों का अध्ययन।
9.	आनुवंशिकी (Genetics)	आनुवंशिकता तथा विभिन्नता का अध्ययन।
10.	कोशिका विज्ञान (Cytology)	इसके अन्तर्गत कोशिका, उसकी आन्तरिक संरचना, कार्य तथा गुणन का अध्ययन किया जाता है।
11.	पादप शरीर क्रिया विभाजन (Plant Physiology)	पौधों की सभी जैविक क्रियाओं का अध्ययन।
12.	ऊतकी (Anatomy)	पौधों की आन्तरिक संरचना का अध्ययन तथा ऊतकों का अध्ययन
13.	वर्गिकी (Taxonomy)	पौधों का अभिनिर्धारण नामकरण तथा वर्गीकरण का अध्ययन

◆◆◆

जीव विज्ञान का इतिहास (History of Biological Science)

5. भारत में विज्ञान शिक्षा की प्रगति पर टिप्पणी कीजिये।
(Write a note on the development of science education.)

उत्तर–भारत में विज्ञान शिक्षा की प्रगति (Development of Science Education)
–राष्ट्रीय शिक्षा नीति पुनर्निरीक्षण कमेटी (1992) इस बात पर बल देती है कि परम्परागत विद्वता तथा ज्ञान को गणित तथा विज्ञान के शिक्षण एवं अधिगम से जोड़ा जाना चाहिए।

(The national policy on education review committee 1992 desired that traditional wisdom and knowledge should be integrated in the teaching and learning of mathematics and science.)

मानव स्वभाव से ही जिज्ञासु है। सभ्यता के आरम्भ से ही यह इच्छा रही है कि वह अपने चारों ओर के वातावरण से परिचित हो। प्रकृति के अज्ञात रहस्यों को जानने की उत्सुकता उसे जन्मजात रूप से प्राप्त हुई है। इसी प्रवृत्ति ने उसे अपने चारों ओर के वातावरण को मुख्य रूप से निरीक्षण करके, कार्यकरण संबंधों के आधार पर, तथ्यों के ज्ञान एवं सिद्धान्तों के निरूपण की ओर उसे अग्रसर किया है। वस्तुतः यहीं

से विज्ञान का जन्म हुआ है। विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप विज्ञान भी विकसित हुआ। आरम्भ के कुछ निरीक्षण वैज्ञानिक खोजों के रूप में परिवर्तित हो गए और फिर उनके आधार पर कुछ सामान्यीकरण बने तथा कुछ सिद्धान्त निर्मित हुए।

भारतवर्ष में विज्ञान शिक्षण के इतिहास को समझने के लिए उसे मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है–

I. आजादी से पहले विज्ञान शिक्षण की प्रगति (Development of Science Education Before Independence)–भारत में वैदिक काल से ही विज्ञान की शिक्षा का वर्णन मिलना आरम्भ हो जाता है। महाभारत काल में रासायनिक शास्त्र, गुप्तकाल में चिकित्सा विज्ञान, नालन्दा विश्वविद्यालय में विज्ञान की शिक्षा आदि इस बात की ओर संकेत करते हैं कि भारत में विज्ञान शिक्षण का इतिहास बहुत प्राचीन है। ब्रिटिश काल में गठित कुछ प्रमुख संस्थाएँ निम्नलिखित हैं–

1. वैज्ञानिक सुधार के लिए भारतीय संस्था (Indian Association for the Education of Science)
2. भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (Indian University Commission)
3. सेडलर आयोग (Sedler Commission 1917-19)
4. सार्जेन्ट रिपोर्ट (Sargent Report 1944)

1. वैज्ञानिक सुधार के लिए भारतीय संस्था (Indian Association for the education of Science)–ब्रिटिश सरकार ने विज्ञान में अनुसंधान की सुविधा प्रदान करने के लिए इस संस्था का गठन किया था।

2. भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (Indian University Commission)–लार्ड कर्जन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय के स्तर को सुधारने के उद्देश्य से इस आयोग की नियुक्ति की गई थी। इस आयोग ने विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा को सुधारने पर बल दिया। इसके अतिरिक्त अन्य देशों से प्रोफेसर आर्मस्ट्रांग (Prof. Armstrong) जैसे विद्वानों को भारत में निमंत्रित किया गया ताकि विज्ञान शिक्षा का स्तर सुधारने में उनकी सहायता की जा सके।

3. सेडलर आयोग (Sedler Commission 1917-19)–इस आयोग की नियुक्ति कलकत्ता विश्वविद्यालय में सुधार लाने के लिए की गई थी। इसने सुझाव दिये कि इन्टर कालेज स्थापित किये जाएँ, जिनमें विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा आदि की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध हो।

4. सार्जेन्ट रिपोर्ट (Sargent Report 1944)–ब्रिटिश सरकार के शिक्षा सलाहकार सर जॉन सार्जेन्ट ने इस रिपोर्ट में सुझाव दिया कि ऐसे तकनीकी विद्यालयों की स्थापना की जाये जिनमें विद्यार्थियों को ज्ञान और कृषि से संबंधित विस्तृत जानकारी दी जा सके।

II. स्वाधीन भारत में विज्ञान शिक्षण की प्रगति (Development of Science Education after Independence)–स्वाधीन भारत में विज्ञान शिक्षा के लिए गठित प्रमुख आयोग निम्न हैं–

- विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (University Education Committee)
- माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission 1952-53)
- तारा देवी रिपोर्ट (Tara Devi Commission 1956)
- माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण विभाग (Panel for Science Education in Secondary School 1964)
- कोठारी आयोग (Kothari Commission 1964-66)
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training 1986)
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (National Policy of Education 1986)
- राममूर्ति कमेटी (Rammurti Committee 1991)
- शिक्षा नीति पर रेड्डी कमेटी (Reddy Committee on Education Policy 1992)

1. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (University Education Committee)–स्वतन्त्रता के पश्चात् सबसे पहले भारत सरकार का ध्यान विश्वविद्यालयों की शिक्षा की तरफ गया। इसे सुधारने के लिए यह आयोग नियुक्त किया गया। जिसके अध्यक्ष हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति डा.एस.राधाकृष्णन (S. Radhakrishnan) थे। शिक्षण के इस आयोग ने सुझाव दिये कि स्नातक पाठ्यक्रम में जो विद्यार्थी विज्ञान शिक्षण का चयन करें, उसे रासायनिक, भौतिक, गणित, वनस्पति विज्ञान (Botany) तथा प्राणी विज्ञान (Zoology) में से कम से कम दो विषय अवश्य लेने चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission 1952-53)–इस आयोग के अध्यक्ष मद्रास विश्वविद्यालय के कुलपति डा.ए.एल. मुदालियर (Dr. A.L Mudaliar) थे। आयोग ने सुझाव दिये कि विज्ञान को माध्यमिक स्कूलों में एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाए तथा विज्ञान शिक्षण के लिए विशेष योग्यता वाले शिक्षकों को नियुक्त किया जाना चाहिए।

3. तारादेवी रिपोर्ट (Tara devi Report 1956)–1956 में शिमला में तारादेवी स्थान पर विज्ञान पर सर्वभारत विचार गोष्ठी (All India Seminar on Teaching of Science) आयोजित की गई, जिसमें सीनियर सेकेण्डरी स्तर तक विज्ञान शिक्षण की समस्याओं के बारे में विचार किया गया। यह भारतवर्ष में अपनी तरह की एक पहली विचार गोष्ठी थी, जिनमें विभिन्न शिक्षकों के सभी पक्षों जैसे–पाठ्यक्रम विज्ञान, उपकरण तथा सामान, विज्ञान शिक्षण की विधियों तथा प्रविधियाँ, विद्यार्थियों का मूल्यांकन, विज्ञान शिक्षण, विज्ञान के आध्यापक, विज्ञान किट्स, विज्ञान में प्रयोगशाला कार्य, प्रयोगशाला योजना, विज्ञान क्लब, विज्ञान मेले, वैज्ञानिक खोज कार्य आदि पर विस्तृत रूप से विचार किया गया।

4. माध्यमिक वियालयों में विज्ञान शिक्षण विभाग (Panel for Science Education in Secondary School 1964)–योजना आयोग द्वारा विज्ञान शिक्षण में प्रगति के लिए डा. के.एन.माथुर (Dr. K.N Mathur) की अध्यक्षता में इस कमेटी का गठन किया गया। इस कमेटी के कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित हैं–

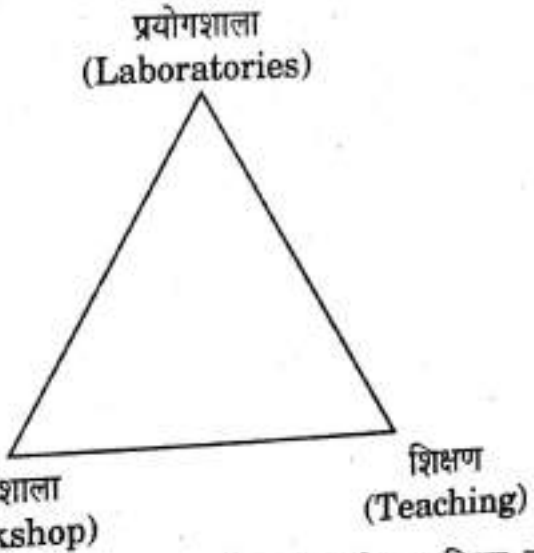

(i) **प्रयोगशालाएँ (Laboratories)**–हाई स्कूलों में विज्ञान विषय आरम्भ करने से पहले जीव विज्ञान, भौतिक तथा रसायन प्रयोगशालाएँ बनाने के लिए कम से कम दस हजार रुपये की राशि प्रदान की जानी चाहिए।

(ii) **शिक्षण (Teaching)**–मिडिल स्कूलों में विज्ञान शिक्षण के लिए कम से कम चार हजार रुपये की राशि दी जानी चाहिए।

(iii) **कार्यशाला (Workshop)**–प्रत्येक हाई स्कूल तथा मिडिल स्कूल में विज्ञान कार्यशाला आयोजित करने के लिए कम से कम एक हजार रुपये की राशि दी जानी चाहिए।

5. कोठारी आयोग (Kothari Commission 1964-66)–विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission) के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. डी. एस. कोठारी (Dr. D.S. Kothari) की अध्यक्षता में इस आयोग ने विज्ञान शिक्षण पर निम्नलिखित सुझाव दिये–

(i) **विज्ञान का अध्ययन (Study of Science)**–विद्यालय शिक्षा के पहले 10 वर्षों में विद्यार्थियों को विज्ञान और गणित का शिक्षण अनिवार्य रूप से दिया जाना चाहिए।

(ii) **पर्यावरण से संबंधित (Related to Environment)**–उच्च प्राथमिक अवस्था में विज्ञान शिक्षण बच्चे के पर्यावरण से संबंधित होना चाहिए।

(iii) **रोमन वर्णमाला (Roman Alphabet)**–अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत वैज्ञानिक मापन के प्रतीकों को समझने और नक्शे, चार्टों तथा सांख्यिकीय सारणी के उपयोग को सुगम बनाने के लिए चतुर्थ कक्षा में रोमन वर्णमाला सिखायी जानी चाहिए।

(iv) **प्रयोगशालाएँ (Laboratories)**–उच्च प्राथमिक विद्यालयों में विज्ञान कक्षा तथा माध्यमिक विद्यालयों में प्रयोगशाला और भाषण कक्ष अवश्य होने चाहिए।

(v) **प्रायोगिक नीति पर (Stress on Experiment Policy)**–विज्ञान को मानसिक अनुशासन के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। इसके साथ-साथ भौतिक, रसायन और जीव विज्ञान की नई अवधारणाओं पर विज्ञान के अध्ययन में प्रायोगिक नीति पर बल देना चाहिए।

(vi) **उच्च विज्ञान पाठ्यक्रम (Higher Science Curriculum)**–शिक्षक तथा प्रयोगशाला आवश्यक सुविधाओं से युक्त कुछ चुने हुए विद्यार्थियों में प्रतिभाशाली छात्रों के लिए उच्च स्तर पर विज्ञान पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(vii) **अलग-अलग विषय (Different Subjects)**–कोठारी आयोग ने सुझाव दिया है विज्ञान को सामान्य विज्ञान समझकर पढ़ाने की अपेक्षा अलग-अलग विधाओं के रूप में पढ़ाना अधिक प्रभावी होगा।

6. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training 1986)–राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) नई दिल्ली विज्ञान शिक्षण को प्रोत्साहन देने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य करती है–

(i) **विज्ञान तथा गणित विभाग (Science and Mathematics Dept.)**–NCERT का यह विभाग विद्यालयों में विज्ञान तथा गणित शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कार्यरत है।

(ii) **सेवाकालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (In Service Training Programme)**–NCERT के द्वारा विज्ञान अध्यापकों के लिए समय-समय अभिनव पर पाठ्यक्रम (Refresher Courses), कार्यशालाएँ (Workshops), सम्मेलन (Conference) तथा गोष्ठियाँ (Seminar) आयोजित किये जाते हैं।

(iii) **रीजनल शिक्षा कालेज (Regional College of Education)**–NCERT के द्वारा अजमेर, भुवनेश्वर, भोपाल तथा मैसूर में रीजनल शिक्षा कालेजों की स्थापना की गई है, जिसमें अन्य पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त विज्ञान में एक वर्षीय B.Ed. पाठ्यक्रम तथा चार वर्षीय B.Sc. शिक्षा संयुक्त पाठ्यक्रम शामिल किया गया है।

(iv) **विज्ञान में राष्ट्रीय प्रतिभा खोज (National Talent Search in Science)**–विज्ञान में रुचि रखने वाले प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को खोजने और उन्हें सुविधाएँ प्रदान करने के लिए NCERT के द्वारा परीक्षा की जाती है तथा जो विद्यार्थी उसमें उत्तीर्ण होते हैं, उन्हें छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं।

(v) **वैज्ञानिक रोचक कार्य (Scientific Hobbies)**–NCERT द्वारा समय-समय पर तथा विभिन्न स्तर पर वैज्ञानिक मेलों और वैज्ञानिक प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त परिषद् द्वारा वैज्ञानिक पत्रिका स्कूल साइंस (School Science) भी निकाली जाती है। विज्ञान किट्स (Science Kits) को बनाना तथा संस्थाओं को भेजना भी इस परिषद का मुख्य कार्य है।

7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (National Policy of Education 1986)–राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने विज्ञान शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए निम्नलिखित विचार किए गए हैं–

(i) **जिज्ञासा की भावना (Spirit of Inquiry)**–विज्ञान शिक्षा को सुदृढ़ किया जाएगा ताकि बच्चों में जिज्ञासा की भावना सृजनात्मकता, वस्तुगत प्रश्न करने का साहस और सौन्दर्य बोध जैसी योग्यताएँ और मूल्य विकसित हो सके।

(ii) **निर्णय लेने की योग्यता (Decision Skill)**–विज्ञान के कार्यक्रमों को इस प्रकार बनाया जाएगा कि उनसे विद्यार्थियों में समस्याओं को सुलझाने और निर्णय लेने की योग्यताएँ उत्पन्न हो सके और वे स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग तथा जीवन के अन्य पहलुओं के साथ विज्ञान के संबंध को समझ सकें। जो लोग अब तक औपचारिक शिक्षा के दायरे से बाहर रहे हैं, उन तक विज्ञान की शिक्षा को पहुँचाने का हर सम्भव प्रयास किया जायेगा।

8. राममूर्ति कमेटी (Rammurti Committee 1991)–आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा के लिए एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी ने सुझाव दिया कि विज्ञान की पढ़ाई का उद्देश्य केवल वैज्ञानिक स्वभाव विकसित करना होना चाहिए। वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति मात्र पर बल नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि वैज्ञानिक विधि को ज्ञान प्राप्ति में साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

9. शिक्षा नीति पर रेड्डी कमेटी (Reddy Committee on Education Policy 1992) –1992 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर सुझाव देने के लिए श्री. एन. जनार्दन रेड्डी (Shri Janardan Reddy) मुख्यमन्त्री आन्ध्र प्रदेश की अध्यक्षता में केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा समिति (CABE) कमेटी की नियुक्ति की। इस कमेटी ने विज्ञान शिक्षण पर निम्नलिखित सुझाव दिये–

1. विज्ञान के प्रोत्साहन के लिए सेवाकालीन शिक्षकों के कोर्स आयोजित करना, विज्ञान पर कई पुस्तकें छापना, विज्ञान शिक्षण के लिए आसान प्रयोगों को खोजना तथा विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना।
2. विज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा आधुनिक विज्ञान का समन्वय किया जाना चाहिए।
3. विज्ञान शिक्षण के लिए खोजपूर्ण विधियाँ (Discovery Method) का उपयोग किया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थी विज्ञान का उचित ज्ञान प्राप्त कर सकें।
4. विद्यार्थियों में विज्ञान की शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिए कि वह विद्यार्थियों के सामान्य ज्ञान और उनके वातावरण से संबंधित हो।

◆◆◆

6. भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विज्ञान शिक्षण के विकास का वर्णन कीजिए। (Describe the development of teaching of science in India after independence.)

उत्तर–विज्ञान शिक्षण के दृष्टिकोण से 8वीं से 10वीं शती का काल अन्धकार युग कहा जा सकता है। विज्ञान की शिक्षा सर्वप्रथम राजा राममोहन राय के प्रयत्नों से 1817 में कलकता के हिन्दू कॉलेज में प्रारम्भ की गई थी। विकास प्रक्रिया के साथ विज्ञान भी विकसित हुआ। प्रारम्भ में कुछ निरीक्षण वैज्ञानिक खोजों के रूप में परिवर्तित हुए या फिर उनके आधार पर कुछ सिद्धान्त बने।

विज्ञान शिक्षण में उल्लेखनीय प्रगति 19वीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजों द्वारा हुई। अंग्रेजी शासन ने 1854 ई. में विज्ञान के व्यवहारिक महत्त्व को समझा और 1862 ई. में विश्वविद्यालय की माध्यमिक कक्षाओं में विज्ञान को एक विषय के रूप में स्थान प्राप्त हुआ। 1905 से 1917 तक विज्ञान के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। परिणामस्वरूप इण्टर कॉलेज विज्ञान, चिकित्सा एवं अभियांत्रिकी के लिये स्थापित किये गये। 1937 में बेसिक शिक्षा में विज्ञान क्राफ्ट केन्द्रित करने का प्रयास किया गया।

1944 में सार्जेण्ट आयोग द्वारा तकनीकी हाईस्कूल की स्थापना की गई।

7. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर जीव विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य बताइए।
(Explain the objectives of teaching biology at secondary education level.)

उत्तर–हमारे देश में विज्ञान शिक्षण के इतिहास में प्रथम बार माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) ने विज्ञान को दसवीं कक्षा तक एक अनिवार्य विषय के रूप में स्वीकार किया। आयोग ने विज्ञान के नागरिक जीवन पर बढ़ते हुए प्रभाव को देखा और तदनुसार शिक्षा में विज्ञान विषय को उचित स्थान देने की सिफारिश की। आयोग ने माध्यमिक स्तर की शिक्षा को दो उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बताया। प्रथम उन छात्रों हेतु जो माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति के बाद जीवन में प्रवेश करेंगे, उस छात्र वर्ग की विज्ञान को उन समस्त उपलब्धियों से अवगत कराना।

द्वितीय उन छात्रों हेतु जिन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करनी है, उस छात्र वर्ग के लिए विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य विश्व विद्यालय शिक्षा की तैयारी के रूप में स्वीकार किया गया है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने विज्ञान शिक्षण के प्रति जो चेतना पैदा की, उसी के परिणामस्वरूप सन् 1956 में 'आल इंडिया सेमिनार ऑफ सांइस' इन सैकंडरी स्कूलस (All India Saminar of Science in secondary school) आयोजित की गई। इसमें विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया। उसके अनुसार प्राथमिक स्कूल स्तर पर विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य इस प्रकार होने चाहिए–

1. छात्रों में स्वच्छ और क्रमबद्ध रीति से कार्य करने की आदत का विकास करना।
2. छात्रों में व्यवस्थित रूप से सोचने की आदत का विकास करना।
3. छात्रों की गणनात्मक, रचनात्मक तथा गवेणात्मक शक्तियों का विकास करना।
4. छात्रों में प्राकृतिक घटनाओं के सूक्ष्म प्रेक्षण, खोज और वर्गीकरण की योग्यता का विकास करना।
5. छात्रों में प्राकृतिक, भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण के अध्ययन के प्रति रुचि जाग्रत करना तथा उसे बनाए रखना।
6. छात्रों में स्वस्थ जीवन हेतु उत्तम आदतों का विकास करना।

सेमिनार में माध्यमिक स्तर के लिए अग्रलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है–

1. बालकों को जन सामान्य के जीवन पर विज्ञान के प्रभाव को समझाना और उनमें वैज्ञानिक अभिरुचियों को विकसित करना।
2. छात्रों को वैज्ञानिक आविष्कारों की कहानियाँ और आविष्कारों की जीवनियों के अध्ययन हेतु प्रेरित करना।
3. उच्च स्तर के विज्ञान पाठ्यक्रम हेतु आधार तैयार करना, जिसमें विद्यार्थियों को आवश्यक सूचनाएँ, तथ्य और कुछ प्रयोगों का अभ्यास कराया जाए।
4. छात्रों को विज्ञान के विकास का ऐतिहासिक क्रम बताना, जिससे वे विज्ञान, विकास एवं प्रगति को समझ सके।

जीव विज्ञान से संबंधित तथ्य (Facts Related to Biology)–पृथ्वी पर सभ्यता के विकास के समय से ही मनुष्य अपने परिवेश को समझने के लिए प्रयत्नशील है। आज वह इसे अपने लिए उपयोग भी कर रहा है। वह प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर अपने दैनिक जीवन को और अधिक सुखदायी बना रहा है।

वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग कई क्षेत्रों में किया जाता है, जैसे–स्वास्थ्य, पौष्टिकता, सफाई, दवाइयाँ, कृषि, उद्योग, मनोरंजन, यात्रा आदि।

पृथ्वी अन्य ग्रहों से भिन्न है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी पर जन-जीवन है। पृथ्वी पर हवा, पानी, भोजन, पेड़-पौधे, जीव-जंतु सभी हैं। पृथ्वी पर जीवन लगभग 30 करोड़ वर्ष पहले एक कोशिक (unicellular) जीव के रूप में आरंभ हुआ था। मनुष्य का अस्तित्व लगभग 20 करोड़ वर्ष पहले हुआ था। मनुष्य के अस्तित्त्व में आने से पहले ही पेड़ पौधे तथा अन्य जीव जंतु अस्तित्व में आ चुके थे।

आरंभ में मनुष्य की जनसंख्या बहुत कम थी। मनुष्य की जनसंख्या की वृद्धि दर भी कम थी। 17वीं शताब्दी में भी मनुष्य की जनसंख्या काफी कम थी। 1665 में मनुष्य की कुल जनसंख्या 54.5 करोड़ थी।

तालिका : विश्व की जनसंख्या

वर्ष	विश्व की जनसंख्या(करोड़ में)
1665 ई.	54.5
1850 ई.	112.1
1960 ई.	240
1970 ई.	300
1990 ई.	500

विश्व की जनसंख्या वृद्धि की तालिका से स्पष्ट है कि 1850 ई. से 1960 तक के समय में जनसंख्या दुगुनी हो गई। 1970 से 1990 के समय जनसंख्या फिर दुगुनी हो गई। जनसंख्या में इस वृद्धि से स्पष्ट है कि विज्ञान के ज्ञान से मृत्यु-दर में काफी कमी आ गई है और मृत्यु दर की कमी से जनसंख्या में वृद्धि हुई है। हमारे देश में 20वीं शताब्दी के आरंभ में मृत्यु दर 42.6 प्रति 1000 थी, परंतु आज यह 14.8 प्रति 1000 है। इस प्रकार इसमें एक तिहाई की कमी आई है।

कृषि और चिकित्साशास्त्र में वैज्ञानिक ज्ञान के कारण मृत्यु दर में यह कमी आई है। मृत्यु दर ही विश्व जनसंख्या में वृद्धि का कारण नहीं है। कृषि की उपज बढ़ने से आज सभी के लिए भोजन है। आज भोजन की कमी से किसी की मौत नहीं होती। सभी के लिए भोजन, सभी के लिए चिकित्सा, ने मनुष्य की आयु में वृद्धि कर दी है। आज अल्पायु में बहुत कम मरते हैं। सभी वयस्क होकर बच्चे उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार जन्म दर में भी वृद्धि हुई है। जन्म दर में वृद्धि भी जनसंख्या विस्फोट का कारण है।

आज जनसंख्या विस्फोट एक समस्या का रूप ले रहा है। पृथ्वी सीमित है। जनसंख्या बढ़ रही है। परिणामस्वरूप जंगल काटे जा रहे हैं। जंगलों के काटने से वनस्पतियाँ व जीव जन्तु कम हो रहे हैं। जंगलों के काटने से काफी समस्याएँ सामने आ रही हैं। इसमें पर्यावरण का दूषित होना, बाढ़ का आना, उपजाऊ मिट्टी का बह जाना आदि मुख्य हैं।

औद्योगिकीकरण भी विज्ञान की देन है। इससे मानव को रोजगार प्राप्त होता है। परंतु औद्योगिकीकरण के प्रभाव से पर्यावरण में कार्बन डाइ-ऑक्साड व सल्फर-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि हुई है। इसके प्रभाव से वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण व ध्वनि-प्रदूषण में वृद्धि हुई है।

यह सत्य है कि विज्ञान के प्रभाव से हमारे परिवेश में प्रदूषण हुआ है। जनसंख्या में वृद्धि हुई है। यह समस्या आज एक गंभीर रूप ले रही है। परंतु इन समस्याओं से छुटकारा भी हमें विज्ञान ही दिला सकता है।

जन्म दर की कमी के आज विज्ञान ने कई साधन जुटाए हैं। इसी प्रकार जल प्रदूषण, वायु, प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण को दूर करने में भी विज्ञान हमारी मदद कर रहा है।

जीव विज्ञान शिक्षण के सिद्धांत
(Principles of Biology teaching)

1. बाल केन्द्रिता सिद्धांत–इस सिद्धांत के अंतर्गत बालक को महत्त्व प्रदान किया जाता है, क्योंकि बालक की उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसकी बौद्धिक क्षमता भी बढ़ती जाती है। साथ ही साथ बालक की शारीरिक, नैतिक, भावात्मक व सामाजिक क्षमता का भी विकास किया जाता है। अतः पाठ्यचर्चा निर्माताओं के लिए यह बहुत जरूरी है कि वे बालकों की विकासात्मक वृद्धि के लिए सही साधन व सामग्री उपलब्ध कराए।

2. समुदाय केंद्रिता सिद्धांत–इस सिद्धांत के अंतर्गत समाज के विषय में ज्ञान के आधार पर पाठ्यक्रम निर्मित किया जाता है। पाठ्यचर्चा निर्माता शिक्षकों, डॉक्टरों तथा अन्य कई क्षेत्रों में कुशल व प्रशिक्षित व्यक्तियों तथा विशेषज्ञों के रूप में समाज की जरूरतों को पूरा करते हैं तथा इसके अनुसार ही समाज में अपना स्थान बना सकते हैं।

3. विज्ञान के एकीकरण का सिद्धांत–विज्ञान की तीन मुख्य शाखाएँ होती हैं—भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान तथा रसायन विज्ञान। इन तीनों ही शाखाओं को आपस में सह-संबंधित करके विज्ञान का एकीकरण किया जाता है। इसे ही विज्ञान के एकीकरण का सिद्धांत कहते हैं, क्योंकि इन तीनों शाखाओं का आपस में घनिष्ठ संबंध है।

4. बालक, समाज व विषय की आवश्यकताओं के एकीकरण का सिद्धांत–विज्ञान के पाठ्यक्रम निर्माण में बालक, समाज तथा विषय वस्तु की आवश्यकता को एकीकृत किया जाता है। यह एकीकरण तीनों स्तरों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

5. सृजनात्मक का सिद्धांत–विज्ञान पाठ्यक्रम सृजनात्मकता पर आधारित होना चाहिए। बालक स्वभाव से सदैव ही उत्साही होते हैं। बालक क्रियाकलापों के आधार पर सीखकर अपनी सृजनात्मकता को प्रदर्शित करते हैं। सृजनात्मकता से बालकों में कई पद्धतियों व तकनीकों को सीखने की आदत विकसित होती है। साथ ही इससे बालक समाज के विकास में अपना सहयोग प्रदान करने में सक्षम होते हैं।

6. क्रियाकलाप केंद्रित सिद्धांत–विज्ञान अधिगम मुख्यतः क्रियाकलाप आधारित होता है। बालक किसी भी कार्य को 'करके सीखो' (Learning by doing) की क्रिया से ही सीखते हैं। यह क्रियाएँ प्रायः घर में प्रयोगशाला तथा विद्यालयों में की जाती है। पाठ्यक्रम निर्माण करते समय क्रियाकलापों का विशेष ध्यान रखा जाता है।

7. लचीलेपन का सिद्धांत–भारत में जगह-जगह लोच विहीन भौगोलिक स्थिति अलग-अलग होती है। अतः एक लोच-विहीन राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा बनाना असंभव है। नई-नई खोजों व आविष्कारों को आधार मानते हुए एक लचीली पाठ्यचर्चा का निर्माण किया जाना चाहिए।

8. संस्कृति का परीक्षण–भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। यहाँ की संस्कृति में अलग-अलग मूल्य, नैतिक प्रवृत्तियों तथा रीति-रिवाजों को देखा जाता है। अतः माध्यमिक स्तर पर पाठ्यचर्चा का निर्माण करते समय संस्कृति के मूल्यों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

◆◆◆

9. अधिगम कर्ता के संज्ञानात्मक विकास पर टिप्पणी करें।
(Write a note on the Cognitive Development of learners.)

उत्तर–संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development)–संज्ञान से तात्पर्य बालक अथवा व्यक्ति के किसी संवेदी सूचनाओं (Sensory Information) को ग्रहण करके उसका रूपांतरण

(Transformation), विस्तारण (Elaboration), संग्रहण (Storage), पुनः प्रस्तुतीकरण (Recovery) तथा उसका समुचित प्रयोग करने से होता है एवं संज्ञानात्मक विकास से तात्पर्य संवेदी सूचनाओं को ग्रहण करना, उन पर चिंतन करना तथा क्रमिक रूप से उनमें काट-छांट कर इस लायक बना देना कि उसका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में आने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए किया जा सके। स्पष्टतः संज्ञानात्मक विकास का संबंध बालकों के बौद्धिक विकास (Intellectual Development) से है। इस विकास की प्रक्रिया में संवेदन (Sensation), प्रत्यक्षीकरण (Perception), प्रतिमा (Imagery), धारणा (Retention), चिंतन (Thinking), तर्कणा (Reasoning), प्रत्यास्मरण (Recall), समस्या समाधान (Problem solving) आदि मानसिक प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन के क्षेत्र में जीन पियाजे (Jean Piaget) तथा ब्रूनर (Bruner) के सिद्धांत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने बालकों का चिंतन एवं तर्कणा के विकास के जैविक (Biological) तथा संरचनात्मक (Structural) तत्वों पर प्रकाश डालकर संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या प्रस्तुत की है। इन सिद्धांतों के ज्ञान से शिक्षक बालकों के बौद्धिक विकास की प्रक्रिया को ठीक ढंग से समझकर उन्हें यथोचित मार्गदर्शन दे सकते हैं।

मानसिक विकास के शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications of Mental Development)–बालकों एवं किशोरों के मानसिक विकास में शिक्षकों एवं अभिभावकों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। इन दोनों के सम्मिलित प्रयास से ही इनका पूर्णरूपेण मानसिक विकास किया जा सकता है और उन्हें वांछित दिशा प्रदान की जा सकती है। माता-पिता द्वारा दिया गया अनौपचारिक मार्गदर्शन एवं विद्यालय की औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था ठीक करने से यह कार्य सुगमता से किया जा सकता है। इसके लिए निम्नांकित सुझावों पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. अभिभावकों एवं शिक्षकों को बालकों के सामने समस्यात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए और इन्हें हल करने के लिए उन्हें प्रेरित करना चाहिए। ये परिस्थितियाँ बालकों की उम्र एवं क्षमता के अनुकूल होनी चाहिए। इससे बालकों में प्रारंभिक अवस्था से ही तर्क एवं चिंतन के आधार पर समस्याओं के हल ज्ञात करने की आदत का विकास होता है। शिक्षक एवं अभिभावक उनका सतत् निरीक्षण एवं मार्गदर्शन करते रहें।
2. शिक्षकों एवं अभिभावकों का व्यवहार, स्नेह, सहयोग एवं सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए और उन्हें बालकों को सतत् प्रेरित करते रहना चाहिए।
3. अभिभावकों की बच्चों से अपेक्षाएँ एवं आकांक्षाएँ उनकी क्षमताओं के अनुरूप ही होनी चाहिए। क्षमता से अधिक अपेक्षा करने से बालकों में कुंठा एवं निराशा पनप सकती है और ये आगे चलकर उनके मानसिक विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती हैं।
4. शिक्षकों एवं अभिभावकों को चाहिए कि वे बालकों की प्रत्येक सफलता पर उन्हें उत्साहित करें और उनकी प्रशंसा करें और असफलता प्राप्त करने पर प्रेम भरा व्यवहार करें और अच्छा करने के लिए प्रेरित करें। डांटना-फटकारना तो चाहिए ही नहीं।
5. शिक्षक कक्षा में अपना अध्यापन स्तर बालकों के अनुकूल ही रखें और उन शिक्षण विधियों का प्रयोग करें जिससे बालक अच्छी तरह से सीख सके।
6. बालकों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का भाव जाग्रत करना चाहिए।

जीव विज्ञान शिक्षण में संज्ञानात्मक विकास की अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि जीव विज्ञान का संबंध मुख्यतः तर्क, चिंतन, प्रत्यक्षीकरण, तर्कणा तथा प्रत्यास्मरण से होता है। अतः यहाँ संज्ञानात्मक विकास होने से ही छात्रों को इन सभी तथ्यों के ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

◆◆◆

जीवन का उदय व विकास
(Origin of Life and Evolution)

10. सजीव जगत में संगठन पर टिप्पणी करें।
(Write a note on the "Organisation in the living world.)

उत्तर–संपूर्ण सौर परिवार में पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है, जिसमें जीवन का अस्तित्व पाया जाता है। इस जीवन की प्रक्रिया में सभी सजीवों (पौधे व जंतु) के अंतर्गत उपापचयी क्रियाएँ (पोषण, श्वसन तथा उत्सर्जन), आकार में वृद्धि व उद्दीपन के प्रति संवेदना रहती है। इस वृद्धि के उपरांत ही सभी पौधे व जंतु जनन द्वारा अपनी संतति उत्पन्न करते हैं।

सभी प्रकार के जीव-जंतुओं का निश्चित आकार व आकृति होती है, परंतु ये कभी एकसमान नहीं होते। यह भिन्नता जनन के समय ही उत्पन्न होती है। सजीव तंत्र के सभी विलक्षण संगठन के भिन्न-भिन्न स्तर आणविक, कोशिकीय, ऊतकीय, अंगतंत्र, व्यष्टि, समष्टि (जनसंख्या), समुदाय, पारिस्थितिक तंत्र व जीवमंडली आदि हैं।

इनमें जीवन का गुण कोशिकीय स्तर पर ही होता है। इन कोशिकाओं का आकार व आकृति भिन्न हो सकती है। कुछ कोशिका एककोशिकीय व कुछ बहुकोशिकीय होती हैं। इस तरह जीव की इकाई कोशिका ही होती है तथा यह पहले से निर्मित कोशिका द्वारा ही विकसित होती है।

संगठन के स्तर–समुद्री जल में रासायनिक पदार्थों से युक्त विभिन्न बूंदों के रूप में जीवन का प्रारंभ हुआ। यह बूंदे अन्य विभिन्न रासायनिक पदार्थों से भिन्न थीं। इन्हीं के परिणामस्वरूप वृद्धि व गुणन प्रक्रियाएँ हुईं। सजीवों के विभिन्न तंत्रों में विभिन्न अंग होते हैं। ये विभिन्न अंग ऊतकों द्वारा निर्मित होते हैं। जंतुओं में एपिथीलियम, संयोजी, पोशी तथा तंत्रिका मुख्य रूप से चार प्रकार के ऊतक पाए जाते हैं तथा पौधों में अधिचर्म, स्थूलकोणोत्तक, दृढ़ ऊतक, ऐसा (केम्बियम), जाइलम, फ्लोएम व मृदुतक होते हैं।

ऊतक के पश्चात् संगठन का स्तर कोशिका होती है। यह जीव की संरचनात्मक व संक्रियात्मक इकाई होती है। शरीर के संपूर्ण भाग कोशिका अथवा कोशिकीय उत्पादों द्वारा निर्मित होते हैं। सभी कोशिकाएँ पूर्ववर्ती कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न होती हैं। कोशिका जटिल रासायनिक पदार्थ जीवद्रव्य द्वारा बनी होती है। जीवद्रव्य सतत् अवस्था में नहीं रह सकता। यह छोटी-छोटी असंतत इकाइयाँ निर्मित करता है, जिन्हें कोशिका कहा जाता है।

संगठन के नौ स्तर

मुख्य शिक्षण बिन्दु–

- जीवित शरीर के संगठन व मानव द्वारा निर्मित मशीन की तुलना
- जीवित प्राणियों का संगठन मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है–

(a) जीव के बाहरी वातावरण में संगठन–

1. जनसंख्या
2. समुदाय
3. पारिस्थितिकी तंत्र
4. जीवमंडल

(b) जीव के आंतरिक वातावरण में संगठन

1. अंगतंत्र
2. ऊतक
3. कोशिकाएँ
4. जीवद्रव्य

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया–मनुष्य शरीर व मनुष्य द्वारा निर्मित किसी मशीन, जैसे टेलीफोन की तुलना करते हैं–

मनुष्य का शरीर	टेलीफोन
1. बिना किसी हस्तक्षेप के स्वचालित व निरंतर गतिशील रहता है।	1. मनुष्य के हस्तक्षेप द्वारा व निरंतर एक ही अवस्था में रहता है।
2. कार्यरत अवस्था परिवर्तनशील होती है।	2. इसकी कार्यरत अवस्था परिवर्तनशील नहीं होती।
3. मनुष्य शरीर द्वारा बिल्कुल भिन्न रासायनिक पदार्थों को ग्रहण करके उन्हें शरीर की आवश्यकतानुसार नवीन पदार्थों में बदले जाने की क्षमता होती है।	3. इनमें परिवर्तन सिर्फ नए पुर्जे जोड़ने अथवा बदलने के कारण होते हैं।

1. स्थानीय परिवेश में उदाहरण के लिए एक तालाब अथवा बरगद का वृक्ष अथवा एक ग्राम (Village) लिया जाता है तो संगठन की अलग दिशा मिलती है। अर्थात् एक ही स्थानीय परिवेश के अंतर्गत भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधों व जंतुओं की आबादी हो सकती है। ये सजीव वातावरण के भौतिक तथा रासायनिक कारकों के साथ मिलकर पारिस्थितिक तंत्र बनाते हैं तथा कई पारिस्थितिक तंत्र मिलकर जीवमंडल का निर्माण करते हैं।
2. प्रत्येक मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार के दस तंत्र होते हैं, जिनसे संबंधित अंग व उनके कार्य निम्नलिखित हैं–

क्र.सं.	तंत्र	कार्य
1.	अध्यावरण तंत्र–अंग त्वचा।	बाह्य चोटों से सुरक्षा, शरीर को आकृति देना, शारीरिक ताप का संतुलन, उपापचयी क्रियाओं द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट व अधिक पानी का उत्सर्जन।
2.	पेशी तंत्र अंग पेशियाँ	शरीर के भीतरी अंगों की सुरक्षा व शारीरिक अंगों को घुमाना व चलाना।
3.	कंकाल तंत्र व अस्थियाँ।	शारीरिक ढांचे को निर्मित करना, गति प्रदान करना व लाल रक्त कणिकाएँ निर्मित करना।
4.	आहार तंत्र अंग–मुख-गुहा, जीभ, दांत, ग्रसिका, आमाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत, गुदा (मलद्वार), यकृत, अग्नाशय, आंत्रीय ग्रंथियाँ।	शारीरिक पोषण प्रदान करना।
5.	श्वसन तंत्र–फेफड़े, श्वासनली, श्वसनिका, ग्रसनी (फेरिक्स), अन्तः नासाछिद्र व बाह्य नासाछिद्र।	शरीर व वातावरण व कोशिका, उसके पर्यावरण के मध्य गैसों द्वारा आदान-प्रदान किया जाना।

11. जैविक विविधता से आप क्या समझते हैं? जीवों के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by biological diversity? Explain the classification of organisms.)

उत्तर–संसार में पेड़-पौधों एवं जीव-जंतुओं की न केवल संख्या ही अधिक है, वरन् उनके रूप, आकृति, आवास एवं स्वभाव में भी अत्यधिक विविधता पाई जाती है। जीवों में पायी जाने वाली इन असमानताओं को जीवों में विविधता या जैविक विविधता (Biological diversity) कहते हैं। अभी तक लगभग तीन लाख पचास हजार (3,50,000) जाति के पेड़-पौधों और लगभग 19 लाख (19,00,000) जंतु प्रजातियों की खोज की जा चुकी है और न जाने कितनी ही जातियों की खोज अभी बाकी है। इनमें वायरस, बैक्टीरिया, अमीबा, क्लोमाइडीमोनास जैसे अति सूक्ष्म जीवों से लेकर 100 मी. ऊँचाई वाले रेडवेड जैसे विशालकाय वृक्ष तथा 30 मीटर लंबाई वाली भूमिकाय ब्लू व्हेल जैसे जीव सम्मिलित हैं। प्रकृति के इतने अधिक जीवों को पहचानना और कम समय में उनसे संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिकों ने समानता व भिन्नता के आधार पर जीवों के अलग-अलग समूहों व वर्गों में बाँटा है।

"नए जीव को पहचानना, सही वैज्ञानिक नाम देना तथा समानताओं और असमानताओं के आधार पर उन्हें विभिन्न समूहों या वर्गों में रखने को वर्गीकरण कहते हैं।"

जीवों के नामकरण एवं वर्गीकरण तथा इनके मूल सिद्धांतों के अध्ययन को वर्गीकरण विज्ञान (economy) अथवा वर्गिकी (systematics) कहते हैं।

वर्गीकरण का महत्त्व
(Importance of Classification)

1. किसी वर्ग के एक जंतु का अध्ययन करके उस वर्ग के अन्य सभी जंतुओं के सामान्य गुणों का पता लग जाता है, जैसे मेंढक का अध्ययन करने से एम्फीबिया वर्ग के जंतुओं के सामान्य लक्षणों का ज्ञान होता है।
2. विभिन्न वर्गों को जटिलता के आधार पर विकासक्रम में रखा जा सकता है, जैसे प्रोटोजोआ, पोरीफेरा, सीलेन्ट्रेटा, एनीलिडा तथा आर्थ्रोपोडा की विकास की सीढ़ी में नीचे से ऊपर की ओर क्रम में रखा है। इसी प्रकार पिसीज, एम्फीबिया, सरीसृप, एवीज तथा स्तनयी संघ कॉर्डेटा के विभिन्न वर्गों का क्रम प्रदिर्शत करते हैं।
3. कुछ जंतु ऐसे भी हैं, जिनमें दो वर्गों के कुछ लक्षण पाए गए। ऐसे जंतुओं को 'संयोजी कड़ी' कहते हैं। इनके अध्ययन से जंतु समूह के विकास क्रम का पता चलता है। उदाहरण के लिए पेरीपेट्स में एनिलिडा व आथ्रोपोडा संघों के तथा आर्कियोप्टैटिक्स के जीवश्व में सरीसृप व पक्षी वर्ग के लक्षण पाए जाते हैं। इससे पता चलता है कि एनिलिडा से आथ्रोपोडा का तथा सरीसृप वर्ग से पक्षियों (एवीज) का विकास हुआ है।
4. वर्गीकरण के आधार पर विभिन्न संघों व वर्गों की उत्पत्ति के मूल स्त्रोत का पता लगाया जा सकता है, जैसे पक्षी एवं स्तनयी वर्गों का विकास सरीसृप वर्ग से हुआ है तथा आर्थ्रोपोडा संघ का

विकास एनिलिडा से और चपटे कृमि संघ प्लेटिहेल्मिन्थीस (Phylum Platyhelminthes) का विकास सीलेन्टेरा संघ के प्राणियों से हुआ।

5. प्राणियों के वर्गीकरण से यह भी पता चलता है कि सबसे पहले सरल रचना करने वाले एक कोशिक प्राणियों का विकास हुआ। उनसे ही जटिल रचना वाले एक कोशिक प्राणी विकसित हुए। बहुकोशिक जीव एक कोशिक पूर्वजों से विकसित हुए। जलीय जीवों का उद्भव पहले हुआ और उनसे बाद में जलस्थलचर तथा उनसे स्थलीय प्राणियों का विकास हुआ।
जलीय प्राणी → जल-स्थलचर प्राणी → स्थलीय प्राणी

6. वर्गीकरण से विभिन्न आवास में रहने वाले जीवों में पायी जाने वाली आकारिक समानताओं और भिन्नताओं के कारण का भी पता चलता है। "किसी एक प्रकार के वातावरण में रहने वाले विभिन्न समुदायों के प्राणियों में आकारिक समानता पाई जाती है तथा अलग पर्यावरण में रहने वाले एक ही समुदाय के प्राणी एक-दूसरे से अलग नजर आते हैं।" जैसे व्हेल स्तनधारी है, परंतु जल में रहने के कारण मछलियों जैसी दिखाई देती है। व्हेल, चमगादड़ और शेर एक ही वंश के प्राणी हैं, परंतु अलग-अलग वातावरण में रहने के कारण बिल्कुल अलग नजर आते हैं।

जीवों का नामकरण
(Nomenclature of Organisms)

प्रायः देखा गया है कि एक ही प्रजाति के जीव अलग-अलग देशों में अथवा एक ही देश में अलग-अलग भागों में अलग-अलग नाम से जाने जाते हैं, जैसे कि गौरेया नामक पक्षी उत्तर भारत में गौरेया, आंध्र प्रदेश में पिच्चुक, इंग्लैंड में हाऊस स्पैरो (House Sparrow), हॉलैंड में मुश्च (Musch) तथा जापान में सुजून (Suzune) के नाम से जाना जाता है। इस असुविधा को दूर करने के लिए कैरोलस लिनीयस नामक वैज्ञानिकों ने जीवों को वैज्ञानिक नाम देने की आवश्यकता का अनुभव किया तथा द्विनाम–नामकरण पद्धति (Binomial Nomenclature Method) की खोज की। नए खोजे गए जीवों की द्विनाम-नामकरण पद्धति द्वारा वैज्ञानिक नाम देने को नामकरण (Nomenclature) कहते हैं।

द्विनाम पद्धति (Binomial Nomenclature)–स्वीडन के वैज्ञानिक लिनियस द्वारा जंतुओं के वैज्ञानिक रूप से नामांकरण पद्धति को द्विनाम पद्धति कहते हैं। इसके अनुसार प्रत्येक प्राणी के दो नाम होते हैं। प्रथम जेनरिक नाम (Generic Name) कहलाता है। जो प्राणी के वंश को प्रदर्शित करता था तथा दूसरा उसकी जाति को। यह उसका स्पेसिफिक नाम कहलाता है। जैसे बिल्ली का वैज्ञानिक नाम : फोलिस डोमेस्टिकस (Felis Domesticus) है। इसमें फेलिस वंश का तथा डोमेस्टिकस जाति का नाम है। आगे कुछ जंतुओं के आम नाम तथा जंतु वैज्ञानिक नाम दिए गए हैं।

क्र.सं.	जन्तु का आम नाम	वंश का नाम	जाति का नाम
1.	मेंढक	राना (Rana)	टिग्रिना (Tigrina)
2.	बिल्ली	फेलिस (Felis)	डोमेस्टिकस (Domesticus)
3.	कुत्ता	कैनिस (Canis)	फेमिलियेरिस (femiliaris)
4.	हाथी	एलिफास (Elephas)	इंडिकस (Indicus)
5.	शेर	फेलिस (Felis)	लीओ (Leo)
6.	चीता	फेलिस (Felis)	टिग्रिस (Tigris)
7.	घोड़ा	इक्वस (Equvs)	इक्वस (Equvs)
8.	चूहा	रैटस (Rattus)	रैटस (Rattus)
9.	मनुष्य	होमो (Homo)	सेपियन्स (Sapiens)

2

शिक्षा-शास्त्रीय विश्लेषण
(Pedagogical Analysis)

1. शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण का अर्थ, महत्त्व व चरण बताइए।
(Explain the meaning, importance and steps of pedagogical analysis.)

उत्तर–शाब्दिक रचना की दृष्टि से शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण पद दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका संधि विच्छेद होता है शिक्षाशास्त्र + विश्लेषण। अतः सरल अर्थों में शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण से तात्पर्य ऐसे विश्लेषण से होता है जो शिक्षाशास्त्र पर आधारित हो। इसके स्वरूप पर अधिक विचार करने के लिए हमें दोनों शब्दों यानी विश्लेषण तथा शिक्षाशास्त्र के अर्थों से परिचित होना होगा।

विश्लेषण पद का प्रयोग उस प्रक्रिया के लिए होता है जिसके द्वारा किसी वस्तु विशेष को उसके भागों, अवयवों तथा तत्त्वों में विभाजित किया जा सकता है। विद्युत विश्लेषण के द्वारा हम पानी को उसके दो भागों अवयवों या तत्त्वों–हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के रूप में विभाजित कर सकते हैं। हम किसी भी शिक्षण इकाई को उसके विभिन्न भागों तथा अवयवों–उपइकाइयों, प्रकरणों तथा अवधारणा विशेष में बाँटने का कार्य इकाई विश्लेषण (Unit analysis) के माध्यम से ही करते हैं। इसी प्रकार विषय वस्तु विश्लेषण की प्रक्रिया का उपयोग हम किसी विषय विशेष के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम की विषयवस्तु को उसके बृहत एवं लघु खंडों, उपखंडों, इकाई तथा उप-इकाइयों, बृहत और लेंघु अवधारणाओं या संप्रत्ययों, प्रकरण तथा उप-प्रकरणों आदि में बाँटने के लिए करते हैं।

अब आगे जहाँ शिक्षाशास्त्र शब्द के अर्थ को जानने की बारी आती है तो हमें इस शब्द का शब्दकोश में जो अर्थ देखने को मिलता है वह है शिक्षा का विज्ञान (Science of teaching)।

विश्लेषण तथा शिक्षाशास्त्र इन दोनों शब्दों के अर्थ से परिचित होने के बाद हम शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण पद को जीव विज्ञान के शिक्षण के संदर्भ में निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं।

जीव विज्ञान की किसी विषयवस्तु का शिक्षण विज्ञान या शिक्षाशास्त्र के नियमों का आधार बनाकर किया जाने वाला विश्लेषण (उसको भागों तथा अवयवों में बाँटने की प्रक्रिया) ही जीव विज्ञान की विषयवस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण कहलाता है।

शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण का महत्त्व
(Importance of Pedagogical analysis)

विद्यालय पाठ्यक्रम में शामिल किसी भी विषय के लिए जो पाठ्यक्रम यानी पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है उसमें इस तरह की विषय वस्तु तथा अधिगम अनुभवों को स्थान देने का प्रयत्न किया जाता है जिसके शिक्षण-अधिगम से एक कक्षा विशेष के लिए निर्धारित शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति में पूरी-पूरी

मदद मिल सके। पाठ्यक्रम में शामिल विषय विशेष की यह विषय सामग्री प्रायः बृहत (Major) तथा लघु (Minor) खंडों या विभागों, बृहत तथा लघु संप्रत्ययों (Major and Minor Concepts), इकाइयों (Units), प्रकरणों (Topics) तथा एकल संप्रत्यय (Single Concepts) के रूप में आयोजित एवं संगठित रहती है। इसी तरह जब किसी अध्यापक को किसी इकाई या प्रकरण विशेष को पढ़ाना होता है तो वह अपनी सुविधा हेतु इसे इसके अवयवों यानी उप-इकाइयों, उप-प्रकरणों या एकल संप्रत्ययों (Single Concepts) के रूप में क्रमिक रूप से व्यवस्थित एवं संगठित कर लेता है। इस प्रकार से किसी पाठ्यक्रम, कोर्स, इकाई या प्रकरण की विषय-वस्तु को इसके अवयवों या भागों में बाँटने की प्रक्रिया को जब केवल मात्र उसके क्रमिक रूप से सुव्यवस्थित एवं संगठित करने के उद्देश्य को लेकर संपन्न किया जाता है तब उसे उस विषय वस्तु विशेष के विश्लेषण (Content Analysis) की संज्ञा दी जाती है। परंतु जब इसी प्रकार का विश्लेषण एक शास्त्रीय एवं विधिवत ढंग से शिक्षाशास्त्रीय यानी शिक्षण विज्ञान की मर्यादाओं तथा सिद्धांतों को आधार बनाकर किया जाता है तबउसे उस विषय विशेष की विषय वस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण कहा जाता है।

इस रूप में विषय वस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण, अपने अर्थ, प्रयोजन एवं प्रक्रिया सभी दृष्टि से विषय वस्तु विश्लेषण जैसे सरल एवं बहु प्रचलित पद से काफी अधिक व्यापक एवं विस्तृत संप्रत्यय माना जाता है।

शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण के चरण
(Steps of Pedagogical analysis)

शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण का मुख्य संबंध प्रकृति, विज्ञान व पर्यावरण से होता है। अतः हम यहाँ इनके विषय में जानते हुए शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण के चरण के विषय में बताएँगे–

विज्ञान मानव को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है कि उसमें अच्छी आदतों का निर्माण हो तथा अपने भौतिक विश्व के संबंध में सचेतना विकसित करें। जीवन की विभिन्न सामाजिक समस्याओं को समझने, मूल्यांकन करने तथा उनका समाधान करने में सहायक होता है। अतः विज्ञान जीवन में उपलब्ध वस्तुओं एवं घटनाओं के कारणों की खोज करता है। इस प्रकार विज्ञान के तीन दृष्टिकोण होते हैं–

1. विज्ञान का सामाजिक दृष्टिकोण (Social Aspects of Science)–वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है और हमारे चारों ओर उपलब्ध वस्तुओं एवं घटनाओं का संबंध विज्ञान से है। अतः संसार को पर्याप्त रूप से समझने के लिए विज्ञान की वर्तमान स्थिति, प्रगति और नवीन ज्ञान होना आवश्यक है। विज्ञान के द्वारा मानव के सामाजिक जीवन के सरलीकरण के लिए विभिन्न शोध किए जा रहे हैं, जैसे–संचार के साधन, यातायात के साधन। इनके द्वारा दो स्थानों के बीच की दूरी अधिक होते हुए भी कार्य में सुगमता हो रही है। सामाजिक जीवन की अति आवश्यकता है 'स्वास्थ्य'। विज्ञान के द्वारा लगातार शोध के माध्यम से विभिन्न लाइलाज रोगों का उपचार खोजा गया है। शल्य क्रिया क्षेत्र में बहुत ही प्रगति हुई है, रोगों के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए नए-नए निदानात्मक उपागम (Diagnostic Approaches) का प्रयोग हो रहा है।

2. विज्ञान का सांस्कृतिक दृष्टिकोण (Cultural Aspects of Science)–वास्तव में विज्ञान का सांस्कृतिक मूल्य बहुत ही उच्च है क्योंकि यह हमारी सामाजिक परंपराओं से जुड़ा हुआ है। विज्ञान का अपना साहित्य है जो किसी भी प्रकार से कम प्रभावशाली नहीं है। वैज्ञानिकों के कार्य करने की एक निर्धारित प्रणाली है, उनमें शोधन के लिए त्याग की भावना रहती है। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान, कार्य की बुद्धि, आलोचनात्मक निर्णय-शक्ति, कल्पना शक्ति तथा वैज्ञानिक गठन की योग्यताओं को विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार विज्ञान आधुनिक सभ्यता और संस्कृति को विकसित कर रहा है।

3. विज्ञान का नीतिशास्त्रीय दृष्टिकोण (Ethical Aspects of Science)–विज्ञान का दृष्टिकोण सदैव सत्यता एवं तार्किकता पर बल देता है। वैज्ञानिक हमेशा सत्य की तलाश में रहते हैं और भौतिकवादी संसार का कल्याण करने में प्रयत्नशील रहते हैं। वास्तव में एक वैज्ञानिक या विज्ञान का विद्यार्थी सत्य की तलाशते हुए समाज की सहायता करने के लिए त्याग की भावना से ओत-प्रोत रहते हैं।

विज्ञान कभी भी अंधविश्वासों पर विश्वास नहीं करता। विज्ञान का आदर्श है—सत्यं, शिवं, सुंदरं। वैज्ञानिक जो भी तथ्य एकत्रित करता है वे सत्यता की कसौटी पर प्रमाणित होते हैं। एक वैज्ञानिक वास्तव में एक कलाकार होता है। वस्तुतः कला और विज्ञान में कोई भेद नहीं है। कलाकार का कार्य सौंदर्य केंद्रित होता है जबकि वैज्ञानिक का कार्य तर्क तथा सत्यता के द्वारा सौंदर्य तक पहुँचने का प्रयास होता है।

विज्ञान का महत्त्व *(Importance of Science)*

विज्ञान की उपयोगिता को सर्वत्र स्वीकृत किया जाता है। हरबर्ट स्पेंसर ने विज्ञान के महत्त्व के विषय में कहा है कि, **"हमारी सभ्यता के विकास में विज्ञान अत्यंत सहायक है, किन्तु इतना उपयोगी होते हुए भी पाठ्यक्रम में इसका स्थान बहुत नीचा है।"**

विज्ञान के महत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. व्यावहारिक महत्त्व (Utilitarian Importance)—विज्ञान व्यावहारिक है, आदिकाल से यह मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यरत है। मनुष्य की मौलिक आवश्यकताएँ, आज विज्ञान की प्राथमिक विषय वस्तु हैं। भोजन उपलब्ध कराने के लिए कृषि का विकास, चीनी और वसा, तेलों का उत्पादन, चाय, कॉफी तथा मदिरा आदि के अनुसंधान में विज्ञान प्रारंभ से ही कार्यरत है। शरीर को ढकने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों एवं डिजाइनों के क्षेत्र में विज्ञान निरंतर शोध कार्य में जुटा है। आवास के क्षेत्र में नई-नई प्रौद्योगिकियाँ, ईंट और सीमेंट की खोज तथा भवन निर्माण में विभिन्न डिजाइनों का मूल्यांकन किया जा रहा है तथा प्रयास है कि समस्त मानवों को उनके अपने घर कम कीमत पर उपलब्ध हो सकें।

विभिन्न व्यवसायों में विज्ञान निरंतर नई-नई खोजों के द्वारा उन्नति कर रहा है। कल कारखाने, कम्प्यूटर, यातायात के साधन और मनोरंजन के साधन आदि इसके उदाहरण हैं। कृषि, चिकित्सा, मशीन, जीवन रसायन, जीव भौतिकी, वन विज्ञान, पशुपालन, मुर्गी पालन, मत्स्य-पालन आदि अनेक ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ विज्ञान अपना प्रभुत्व बनाए हुए हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विज्ञान ने मानव के व्यवहार को प्रत्येक क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और अपना महत्त्व लगातार बढ़ाता जा रहा है।

2. सांस्कृतिक महत्त्व (Cultural Importance)—विज्ञान ने सांस्कृतिक निर्माण एवं सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा में लगातार महत्त्वपूर्ण योगदान देते हुए सांस्कृतिक वैभवता में वृद्धि कर ली है, जिससे हमारा जीवन दर्शन प्रभावित हो रहा है और इसका प्रत्यक्ष प्रभाव नए सांस्कृतिक निर्माण पर पड़ रहा है। विज्ञान के द्वारा अंधविश्वासों, रूढ़ियों को समाप्त किया जा रहा है तथा रहस्यों से पर्दा उठाकर सत्यता का ज्ञान प्रदान किया जा रहा है। चिन्तन और अनुभूतियों में विज्ञान के द्वारा क्रांतिकारी परिवर्तन लाए गए हैं। सांस्कृतिक विभिन्नता के कारणों का विज्ञान सम्मत विवेचन से सांस्कृतिक सद्भाव बढ़ा है। विभिन्न संचार एवं मनोरंजन के साधनों के द्वारा एक स्थान की संस्कृति को दूसरे स्थान पर प्रदर्शित करना आसान हो गया है।

3. बौद्धिक महत्त्व (Intellectual Importance)—किसी विषय के बौद्धिक महत्त्व को उस विषय के द्वारा सत्यान्वेषण की क्षमता के आधार पर मूल्यांकित किया जाता है। विज्ञान प्रदत्त विधि के उपयोग से व्यक्तियों में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण विकसित करता है, जो इसकी मान्यताओं, पूर्वाग्रहों, सत्यान्वेषण आदि में बाधक नहीं होते। विज्ञान सदैव क्रमबद्ध ज्ञान पर आधारित होता है तथा चिंतन करने की प्रक्रिया में प्रशिक्षित करता है और तार्किक शक्ति का विकास करता है। यह हमें संवेगों से प्रभावित निर्णयों से बचाता है तथा किसी परिस्थिति के प्रति वास्तविकता के आधार पर प्रतिक्रिया करना सिखाता है। इस प्रकार विज्ञान का बेहद महत्त्वपूर्ण बौद्धिक महत्त्व है।

4. सौंदर्यात्मक महत्त्व (Aesthetic Importance)—विज्ञान से यह समझा जाता है कि वह छात्रों में सौंदर्यानुभूति का विकास नहीं करता है, लेकिन यह विशेषकर जीव विज्ञान के संदर्भ में पूर्ण निराधार है। विज्ञान सत्य की खोज कर वास्तविक सौंदर्य की ओर अग्रसर रहता है। प्रकृति में निहित अनेक रहस्यों

को एक वैज्ञानिक तथ्यों के तालमेल और संतुलन के साथ देखकर जो अनुभूति प्राप्त करता है तथा समाज को उपलब्ध कराता है वह किसी कलाकार द्वारा प्रदत्त अनुभूति से अधिक होती है। इसलिए माना जाता है कि "सत्य ही सौंदर्य है और सौंदर्य ही सत्य है।" ("Truth is beauty and beauty is truth.")

5. नैतिक महत्त्व (Moral Importance)–नैतिकता का प्रमुख आधार सत्य है और विज्ञान भी सदैव सत्य की खोज में ही रहता है। नैतिकता एक ऐसा सापेक्ष प्रत्यय है, जो स्थान, व्यक्ति, समय एवं परिस्थिति से सर्वाधिक प्रभावित होता है। इसलिए लगातार नैतिक मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है। लेकिन फिर भी कुछ ऐसी आधारभूत मान्यताएँ होती हैं जो शाश्वत होती हैं। नैतिकता में मुख्य रूप से तीन शाश्वत आधार होते हैं–सत्यं, शिवं और सुन्दरं। विज्ञान सदैव प्रथम मूल्यों को ही आधार मानकर चलता है और इसके द्वारा अन्य दोनों आधारों को प्राप्त करता है।

6. वैज्ञानिक अभिरुचि का विकास (Development of Scientific Attitude)–विज्ञान का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है कि छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास, जिसके फलस्वरूप जीवन में प्रत्येक वस्तु एवं घटना को वैज्ञानिक रूप में मूल्यांकित करते हुए उसका अर्थ निकालता है। यह किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं रहता। इस प्रकार वह अपनी जीवन प्रणाली को ही वैज्ञानिक तरीके से व्यवस्थित कर लेता है और उसका दृष्टिकोण प्रयोजनवादी (Pragmatic) हो जाता है।

निम्न विषयों के शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण (Pedagogical analysis on the following topics)-

- प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis)
- मानवीय पाचन तंत्र (Human digestive system)
- खाद्य श्रृंखला (Food Chain)
- जैवकीय संतुलन (Ecological Balance)
- मानवीय श्वसन तंत्र (Respiratory system)
- उत्सर्जन तंत्र (Excretory)
- परिसंचरण तंत्र (Circulatory)
- आनुवंशिकता व पर्यावरण (Heredity and environment)

◆◆◆

(A) प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis)

2. शैक्षणिक विश्लेषण से आपका क्या अभिप्राय है? दसवीं कक्षा के लिये किसी उपविषय का शैक्षणिक विश्लेषण कीजिये।
(What do you mean by pedagogical analysis? Perform pedagogical analysis of any topic for tenth class.)

अथवा

कक्षा नवम के किसी एक उपविषय का शिक्षा-शास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत कीजिये।
(Perform the pedagogical analysis of any topic for ninth class.)

अथवा

दसवीं कक्षा के लिये प्रकाश संश्लेषण और कोशिका रचना शिक्षण में विशिष्ट उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखिये?
(Formulate Specific objectives in behavioural terms for teaching photosynthesis and cell structure in Class X.)

अथवा

विषय-वस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण क्या है? कोशिका संरचना का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत कीजिये।
(What is pedagogical analysis of the contents? Perform the pedagogical analysis of cell structure.)

अथवा

ब्लूम की शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण की व्याख्या कीजिये। माध्यमिक विद्यालय स्तर के लिये कोशिका संरचना उप-विषय पर विशिष्ट उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखिये।
(Explain Bloom's Taxonomy of educational objectives. Formulate specific objectives in behavioural terms on a topic on cell structure for secondary school level.)

अथवा

दसवीं कक्षा के लिए प्रकाश संश्लेषण विषय-वस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण कीजिये।
(Perform pedagogical analysis of subject contents on photosynthesis for class X.)

अथवा

विषयवस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण क्या है? कोशिका संरचना का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत कीजिये।
(What is pedagogical analysis of the content? Perform the pedagogical analysis of cell structure.)

अथवा

शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? दसवीं कक्षा के लिये 'प्रकाश संश्लेषण विषयवस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण कीजिये।
(What do you mean by Pedagogical analysis? Pedagogical analysis of subject content on the topic Photosynthesis for Class X.)

उत्तर–पाठ्य-वस्तु (Contents)–सर्वप्रथम **स्टीफन हेल्स** ने कहा था कि हरे पौधे पत्तियों द्वारा पोषण पाते हैं और इसमें वायुमण्डल से वायु तथा सूर्य के प्रकाश का उपयोग करते हैं। **वॉन हेलमोण्ट** (Van Helmont) के अनुसार हरे पौधे मिट्टी से जल अवशोषित कर अपनी वृद्धि करते हैं। **जोसेफ प्रीस्टले** ने अपने एक प्रयोग द्वारा बताया कि पौधे प्रकाश में अशुद्ध वायु को शुद्ध कर देते हैं।

जॉन-इन्गेन हौज (1779) ने बताया कि पौधों के हरे भाग सूर्य प्रकाश में वायु को शुद्ध करते हैं, परन्तु रात में पौधों के सभी भाग वायु को अशुद्ध करते हैं, इन्होंने अपने प्रयोगों में प्रीस्टले के प्रयोगों को आधार बनाया।

जीन सेनेबियर ने बताया कि हरे पौधे प्रकाश की उपस्थिति में CO_2 को वायुमण्डल से ग्रहण करते हैं, तथा (O_2) उत्पन्न करके वायुमण्डल में छोड़ते हैं। **लैवोजियर** ने दूषित वायु में CO_2 का पता लगाया था। **थियोडोर डि-सास्योर** के अनुसार हरे पौधे CO_2 और H_2O पर निर्भर करते हैं। इन्होंने अपने प्रयोग द्वारा बताया कि प्रकाश की उपस्थिति में पौधे CO_2 ग्रहण करते हैं तथा O_2 उत्पन्न करते हैं। रात के समय पौधे O_2 का उपयोग करते हैं, तथा CO_2 उत्पन्न करते हैं। अतः इनके अनुसार प्रकाश-संश्लेषण में ग्रहण की गई CO_2 तथा उत्पन्न की गई O_2 की मात्रा समान होती है।

पेलेटियर तथा केवेन्टयू (1818) में हरे पौधे को अल्कोहल में डुबो कर प्रयोग किया तथा **क्लोरोफिल** नामक हरित लवक की उपस्थिति का वर्णन किया। सन् 1845 में **जूलियस रॉबर्ट मेयर** ने ऊर्जा संरक्षण के सिद्धान्त के आधार पर बताया कि पौधे सूर्य प्रकाश ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदलकर कार्बनिक पदार्थों का संचय करते हैं। **बोसिंगाल्ट** ने सिद्ध किया था कि पौधों के लिये सम्पूर्ण कार्बन का स्रोत केवल CO_2

गैस होती है। जूलियस जाक्स ने बताया कि प्रकाश-संश्लेषण के दौरान मण्ड (starch) पत्तियों में बनता है, क्योंकि पत्तियों में हरित लवक होते हैं। ब्लैकमैन तथा उनके साथियों ने प्रकाश- संश्लेषण पर ताप, CO_2 और प्रकाश के प्रभाव का अध्ययन करके बताया कि प्रकाश-संश्लेषण क्रिया में एक प्रकाश-क्रिया (light reaction) और एक अन्धकार प्रक्रिया (dark reaction) होती है।

उपरोक्त प्रयोगों तथा विचारधाराओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि हरे पौधे सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में कार्बनिक पदार्थों का निर्माण करते हैं। इस क्रिया में ऊर्जा द्वारा कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण होता है इसलिए इसे **प्रकाश-संश्लेषण क्रिया** कहा जाता है।

हरे पौधे सूर्य से ऊर्जा लेकर, वायुमण्डल से CO_2 तथा H_2O जल की उपस्थिति में कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं। जिनमें रासायनिक ऊर्जा संचित हो जाती है।

अतः क्लोरोफिल की उपस्थिति में सूर्य की ऊर्जा, CO_2 तथा जल अवशोषित कर कार्बनिक पदार्थ का निर्माण करने की प्रक्रिया को **प्रकाश-संश्लेषण** कहा जाता है।

$$6\,CO_2 + 12\,H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2 + 6H_2O$$

प्रकाश-संश्लेषण क्रिया पौधों की पत्तियों में होती है, क्योंकि पत्तियों में हरित लवक क्लोरोफिल होता है। पौधों की इस पोषण विधि को **पादप सम पोषण** विधि कहते हैं। जीवाणुओं, कवकों एवं जन्तुओं में प्रकाश-संश्लेषण क्रिया नहीं होती है। ये जीव अपने भोजन के लिए पौधों पर निर्भर करते हैं। मानव जीवन पौधों पर ही निर्भर करता है, क्योंकि अपने उपयोग में आने वाली वस्तुओं, लकड़ी, तेल, ईंधन, फर्नीचर आदि हम पौधों से ही प्राप्त करते हैं।

अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष लगभग 70 अरब मीट्रिक टन कार्बनडाइऑक्साइड वायुमण्डल से प्रकाश-संश्लेषण क्रिया में भाग लेती है।

प्रकाश-संश्लेषण के मुख्य उत्पाद ग्लूकोस तथा ऑक्सीजन हैं। ग्लूकोस मण्ड (Starch) बनाता है।

$$6CO_2 + 12H_2O \xrightarrow{\text{क्लोरोप्लास्ट}} \underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} + 6O_2 + 6H_2O$$

$$n\ (\text{ग्लूकोस}) \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} \text{मण्ड (starch)}$$

पौधों की हरी पत्तियों में ही मण्ड (starch) का निर्माण होता है।

भोजन में जटिल पदार्थों को पचाने का कार्य पाचक तंत्र द्वारा होता है। पाचन क्रिया में जो शरीर के अंग भाग लेते हैं उन्हें पाचक अंग कहा जाता है। पाचक तन्त्र को पाँच भागों में बाँटा गया है—

(i) पाचन अंग, (ii) पाचन क्रिया, (iii) अवशोषण, (iv) स्वांगीकरण, (v) बहिःक्षेपण।

पाचक अंगों में सबसे पहला अंग **मुखगुहा** है। मुखगुहा का पिछला भाग **ग्रसनी** कहलाता है। ये **ग्रासनली** में खुलता है। **ग्रसिका** या **ग्रासनली** **आमाशय** में खुलती है। **छोटी आंत** में भोजन का पाचन तथा अवशोषण होता है। **बड़ी आंत** में जल का अवशोषण होता है, तथा मल बनता है।

यकृत तथा अग्नाशय पाचन ग्रन्थियां हैं।

मनुष्य में वायुवीय श्वसन होता है। यह वायुमण्डल से ऑक्सीजन लेता है। मनुष्य में श्वसन के मुख्य अंग फेफड़े (दायाँ तथा बायाँ फेफड़ा), श्वास नली, लैरिंक्स, तथा श्वसनिकाएं हैं। श्वसन में गैसों का आदान-प्रदान होता है। श्वसन दो क्रियाओं द्वारा सम्पन्न होता है—अन्तःश्वसन (inspiration) तथा निःश्वसन (Expiration)। श्वसन गैसों का परिवहन रक्त परिसंचरण तंत्र की सहायता से होता है। रक्त में उपस्थित लाल रंग का वर्णक जिसे **हीमोग्लोबिन** कहा जाता है। गैसों को ले जाने का कार्य करता है। ऑक्सीजन तथा हीमोग्लोबिन का संयोजन जितनी शीघ्रता से होता है, उतनी ही शीघ्रता से ऑक्सीहीमोग्लोबिन का विखण्डन हो जाता है, अतः हीमोग्लोबिन बार-बार ऑक्सीजन से संयोजित होता है और मुक्त होता है।

शरीर में श्वसन के दौरान कार्बनडाइऑक्साइड गैस ग्लूकोस के ऑक्सीकरण से बनती है। ये CO_2 गैस फेफड़ों द्वारा शरीर से बाहर निकाली जाती है।

फेफड़े, गुर्दे या वृक्क, बड़ी आंत तथा त्वचा उत्सर्जन के मुख्य अंग हैं।

प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया (Process of Photosynthesis)—वह प्रक्रिया जिसमें हरे पौधे सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में वायुमण्डल से कार्बनडाईऑक्साइड, भूमि से जल अवशोषित कर क्लोरोफिल युक्त कोशिकाओं में कार्बनिक पदार्थों (कार्बोहाइड्रेटस) का निर्माण करते हैं, **प्रकाश-संश्लेषण** कहलाती है। इस क्रिया में प्रकाश की ऊर्जा से कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण होता है, इसलिए इसे प्रकाश-संश्लेषण कहा जाता है। यह ऊर्जा CO_2 तथा H_2O के उपयोग से शर्करा का निर्माण करती है। इस तरह प्रकाश ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है।

$$6CO_2+12H_2O \xrightarrow[\text{हरित लवक}]{\text{प्रकाश}} C_6H_{12}O_6+6O_2+6H_2O$$

प्रकाश-संश्लेषण क्रिया पौधों की क्लोरोफिल युक्त कोशिकाओं में होती है। ऐसी कोशिकाएं हरी पत्तियों में होती हैं। पौधों की इस प्रकार भोजन निर्माण विधि को **पादप सम पोषण** विधि कहा जाता है। हम अपने भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पौधों पर ही निर्भर करते हैं।

प्रकाश-संश्लेषण के मूल उत्पाद—प्रकाश-संश्लेषण में CO_2 का अपचयन करने के लिए H_2O की आवश्यकता होती है। ऑक्सीजन की उत्पत्ति जल के विघटन से होती है। ग्लूकोस शर्करा ($C_6H_{12}O_6$) से मण्ड (starch) बनता है।

$$6CO_2+12H_2O \xrightarrow[\text{हरित लवक}]{\text{प्रकाश}} C_6H_{12}O_6+6O_2+6H_2O$$

$$\text{n ग्लूकोस} \rightarrow \text{मण्ड (स्टार्च)}$$

पत्तियों की कोशिकाओं में क्लोरोफिल होता है अतः मण्ड बनाने का कार्य हरी पत्तियों में ही किया जाता है।

प्रकाश-संश्लेषण क्रिया में एक **प्रकाश क्रिया** (light reaction) तथा दूसरी **अन्धकार क्रिया** (dark reaction) होती है। मण्ड पदार्थ आयोडीन के साथ रंगने पर नीले रंग के हो जाते हैं।

ऑक्सीजन की उत्पत्ति—प्रकाश-संश्लेषण के दौरान ऑक्सीजन उत्पन्न होती है। इसे निम्न प्रयोग द्वारा दर्शाया जाता है।

एक जलीय पौधा हाइड्रिला लें। पौधे की पत्तियों को एक बीकर में रखकर उसके ऊपर एक कीप को उल्टा कर रखें। बीकर में साधारण जल भरो ताकि पौधा, कीप तथा उसकी नली पानी में डूब जाए। जल में लगभग 1 ग्राम पोटेशियम बाइकार्बोनेट ($KHCO_3$) भी डाल दो। अब परखनली को जल से भरकर उसके मुंह को अंगूठे से दबाकर, कीप के सिरे पर सावधानी से उलटकर खड़ा कर दें। परखनली के मुंह को जल के नीचे रखें ताकि वायु का बुलबुला अन्दर न जाये।

उपकरण को प्रकाश में रखो। जैसे ही प्रकाश-संश्लेषण क्रिया होगी, तो पौधे से ऑक्सीजन गैस के बुलबुले निकलकर परखनली में ऊपर की ओर चले जाते हैं।

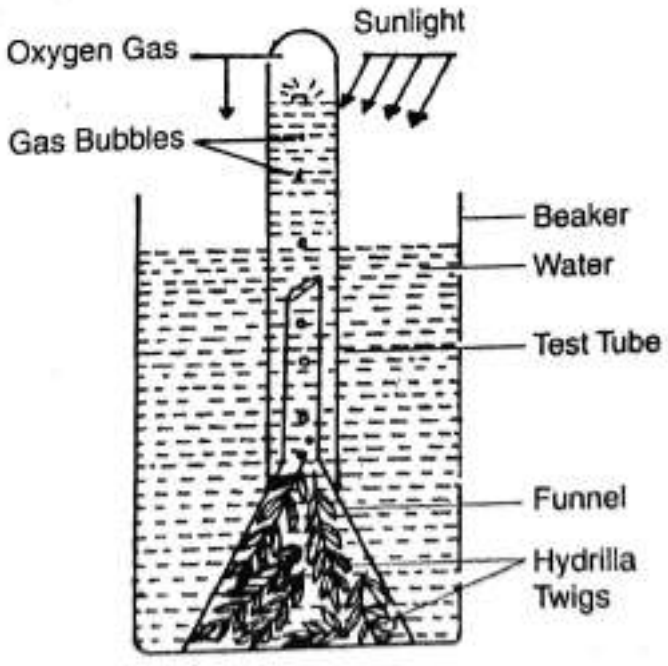

चित्र : प्रकाश-संश्लेषण में ऑक्सीजन गैस का उत्पादन

जितनी तेजी से से प्रकाश- संश्लेषण किया होगी उतनी ही अधिक मात्रा में ऑक्सीजन गैस परखनली में जायेगी।

परीक्षण करने के लिए परखनली को सावधानीपूर्वक कीप से हटाकर उसमें जलती हुई तीली डाले तो उसमें लौ उत्पन्न होगी। सामान्यतः ऑक्सीजन की उत्पत्ति से भी ऐसा ही होता है।

अतः हम इस प्रयोग द्वारा प्रकाश-संश्लेषण किया में उत्पन्न होने वाली ऑक्सीजन की उत्पत्ति प्रदर्शन कर सकते हैं।

कोशिका संरचना (Cell Structure)–कोशिका सभी जीवधारियों की आधारभूत संरचनात्मक इकाई है। कोशिकाएं मिलकर तन्तुओं (tissues) का और तन्तु अंगों का निर्माण करते हैं। कोशिका अति सूक्ष्म आकार की होती हैं। इसे सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही देखा जा सकता है। औसत कोशिका का व्यास लगभग 0.02 उउ होता है। कोशिका न केवल रचनात्मक वरन् कार्य की इकाई भी है। जीवन की सभी क्रियाएं जैसे श्वसन, उत्सर्जन, वृद्धि, उपापचय कोशिका के अन्दर होती है।

प्रत्येक कोशिका के अन्दर कणिकामय (granular) पारदर्शी अर्ध द्रव भरा होता है जिसे **कोशिका द्रव्य** (cytoplasm) कहते हैं। इनमें विभिन्न लवण, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट आदि विलयन कोलॉइडी रूप में विद्यमान होते हैं। कोशिका द्रव्य में अनेक वस्तुएं जैसे–**माइटोकाण्ड्रिया, नाभिका, गॉल्जीकाय** (golgi bodies), **साइटोसैल** आदि उपस्थित रहती हैं। कोशिका में द्रव्यमान के अनुसार 70% जल होता है। कोशिका द्रव्य के **बाह्य भाग** को कोशिका रस (Ectoplasm) तथा आन्तरिक भाग को अन्तः **कोशिका रस** (Endoplasm) कहते हैं। आन्तरिक कोशिका रस में अनेक रिक्त स्थान होते हैं, जिन्हें **रसधानी** (Vacuoles) कहते हैं।

वनस्पति कोशिका में **प्लास्टिड** (Plastids) भी होते हैं। इनमें कोशिका झिल्ली के ऊपर सेलुलोज का एक आवरण होता है जिसे अन्तः प्रद्रव्यी जालिका कहते हैं। यह कोशिका का परिवहन तंत्र होती है।

तारक केन्द्र अथवा सेन्ट्रोसोम केन्द्रक के निकट होते हैं। यह जन्तु कोशिका में होते हैं। गाल्जीकाय में वसीय तरल पदार्थों की थैली जैसी संरचनाएं होती हैं। **राइबोसोम** प्रायः कोशिका झिल्ली से चिपके होते हैं। **माइटोकॉण्ड्रिया** कोशिका की ऊर्जा शक्ति का केन्द्र है। लाइसोसोम भी राइबोसोम की भांति गोल होते हैं।

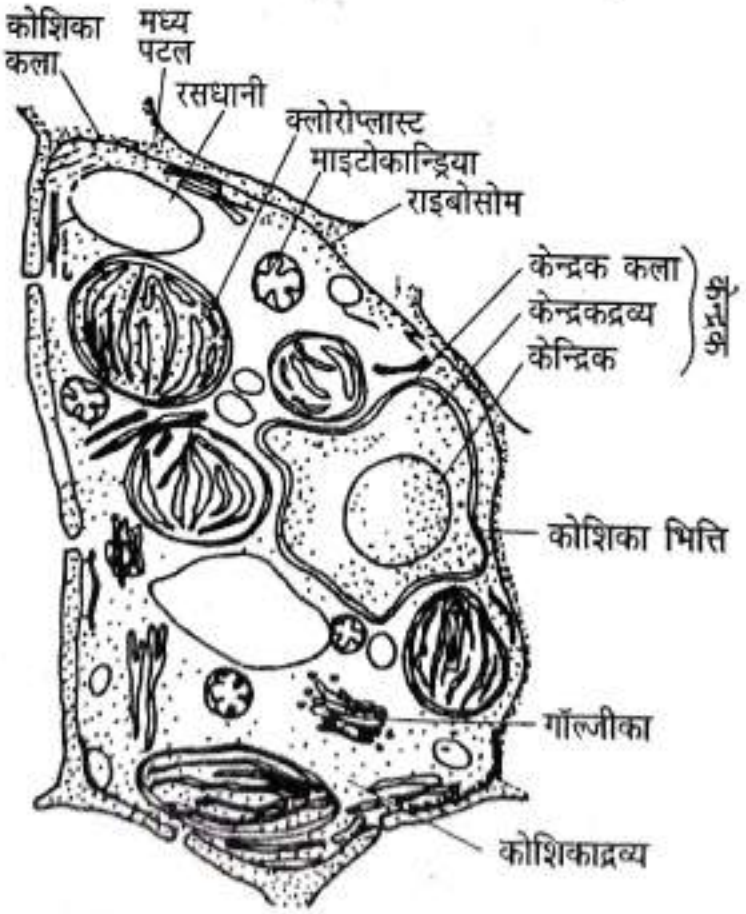

चित्र : कोशिका की संरचना

केन्द्रक (Nucleus)–ये सभी कोशिकाओं में पाया जाता है। केन्द्रक के चारों ओर एक झिल्ली होती है, जिसे केन्द्रक झिल्ली कहते हैं। केन्द्रक के अन्दर एक द्रव्य उपस्थित होता है जिसे केन्द्रक द्रव्य कहते हैं।

यह एक विशेष प्रकार की प्रोटीन है जिसे क्रोमेटिन कहा जाता है। कोशिका विभाजन के समय क्रोमेटिन धागे का रूप लेकर दण्डाकार रचना बनाती है जिसे क्रोमोसोम या गुणसूत्र कहते हैं। क्रोमेटिन न्यूक्लिओप्रोटीन से बनते हैं तथा न्यूक्लिओप्रोटीन न्यूक्लिक अम्ल व प्रोटीन से बनते हैं। न्यूक्लिक अम्ल दो प्रकार के हैं–

(i) DNA (डी आक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल)

(ii) RNA राइबोन्यूक्लिक अम्ल

बहुत सी कोशिकाओं में एक केन्द्रक होता है, ये एक केन्द्रकीय कोशिका कहलाती है, तथा जिन कोशिकाओं में दो केन्द्रक होते हैं, उन्हें द्विकेन्द्रकीय कोशिका कहते हैं। जिन कोशिकाओं में दो से अधिक केन्द्रक हों उन्हें बहुकेन्द्रकीय कहा जाता है।

कोशिका विभाजन का महत्त्व (Importance of Cell Structure)–कोशिका विभाजन का महत्त्व निम्नलिखित होता है–

1. जीवों के शारीरिक विकास हेतु कोशिका विभाजन अनिवार्य है।
2. जीवों में वृद्धि का मुख्य कारण कोशिका विभाजन ही होता है।
3. कोशिका विभाजन से कोशिकाओं की टूट-फूट की मरम्मत होती हैं।
4. कोशिका विभाजन से जीवों में पैतृक गुणों का स्थानान्तरण होता हैं।

◆◆◆

प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis Process)

3. प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया पर लेख लिखें।
(Write a note on the "Photosynthesis Process.")

उत्तर–प्रकाश संश्लेषण की परिभाषा (Definition of Photosynthesis)–सूर्य के प्रकाश में पौधों की हरी कोशिकाओं में उपस्थित पर्णहरिम (क्लोरोफिल) की सहायता से कार्बन डाइऑक्साइड बनने की क्रिया को प्रकाश संश्लेषण या कार्बन स्वांगीकरण (Carbon assimilation) कहते हैं।

प्रकाश संश्लेषण एक जैव रासायनिक अभिक्रिया है इसको निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जाता है–

$$6CO_2 + 6H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{सूर्य का प्रकाश}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2$$

कार्बन डाइऑक्साइड जल या पानी ग्लूकोज ऑक्सीजन

प्रकाश संश्लेषण की 5 मुख्य विशेषताएँ हैं–

1. सूर्य के प्रकाश की विकिरण ऊर्जा (radient energy) रासायनिक ऊर्जा के रूप में बदलकर खाद-पदार्थों में संचित की जाती है।
2. वायुमंडल की कार्बन डाइऑक्साइड से कार्बन व ऑक्सीजन प्राप्त किए जाते हैं।
3. जल से हाइड्रोजन ली जाती है।
4. जल के अपघटन से निकली ऑक्सीजन इस अभिक्रिया में उप-उत्पाद के रूप में वायुमंडल में मुक्त होती है।
5. प्रकाश-संश्लेषण का अंतिम उत्पाद ग्लूकोस शर्करा है। यह शीघ्र ही मंड में बदल जाती है।
6. प्रकाश-संश्लेषण के लिए सूर्य का प्रकाश तथा पर्णहरिम (क्लोरोफिल) की उपस्थिति आवश्यक है।

प्रकाश संश्लेषण की क्रिया विधि *(Mechanism of Photosynthesis)*

प्रकाश-संश्लेषण एक जटिल आंतरोष्मी (Endothermal) उपचयी अभिक्रिया है। यह क्रिया दो चरणों में पूरी होती है। प्रकाश अभिक्रिया तथा अप्रकाशिक अभिक्रिया।

1. प्रकाश अभिक्रिया या हिल अभिक्रिया (Light Reaction or Hill's Reaction)–प्रकाश अभिक्रिया का अध्ययन सर्वप्रथम हिल (Hill) नामक वैज्ञानिक ने किया था। इसलिए इसे हिल अभिक्रिया कहते हैं। यह क्रिया हरित लवकों के ग्रैना में क्लोरोफिल की सहायता से होती है। यह निम्नलिखित पदों में पूर्ण होती है–

1. सूर्य का प्रकाश अवशोषित कर हरित लवकों के ग्रैनम में उपस्थित पर्णहरित सक्रिय हो जाता है और ADP से ATP (एडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट) का निर्माण होता है। ATP में प्रचुर मात्रा में ऊर्जा संचित हो जाती है।
2. ऊर्जावित क्लोरोफिल द्वारा जल का H^+ तथा OH^- आयनों में प्रकाश अपघटन (Photosynthesis) होता है।

$$4H_2O \xrightarrow{\text{ऊर्जावित क्लोरोफिल}} 4(H^+) + 4(OH^-)$$

3. जल के प्रकाश अपघटन से उत्पन्न OH^- आयन परस्पर मिलकर पानी और ऑक्सीजन बनाते हैं। ऑक्सीजन गैस के रूप में मुक्त होकर स्टोमेटा द्वारा बाहर निकल जाती है।

$$4(OH)^- \xrightarrow{\text{संघनन}} 2H_2O + O_2$$

4. जल के प्रकाश-अपघटन से मुक्त हाइड्रोजन आयन से उत्तेजित इलेक्ट्रॉन्स निकलते हैं जो इलेक्ट्रॉन स्थानान्तरण प्रणाली (electron transfer system) के द्वारा ऊर्जा को ATP के रूप में मुक्त करते हैं। इस क्रिया में H^+ आयन NADP को $NADPH_2$ में अपचयित करते हैं–

$$4(H^+) + 2NADP \longrightarrow 2NADPH_2$$

$$ADP + NP \longrightarrow ATP$$

ADP से ATP के निर्माण को फोटोफॉस्फोरिलेशन (Photophosphorylation) कहते हैं।

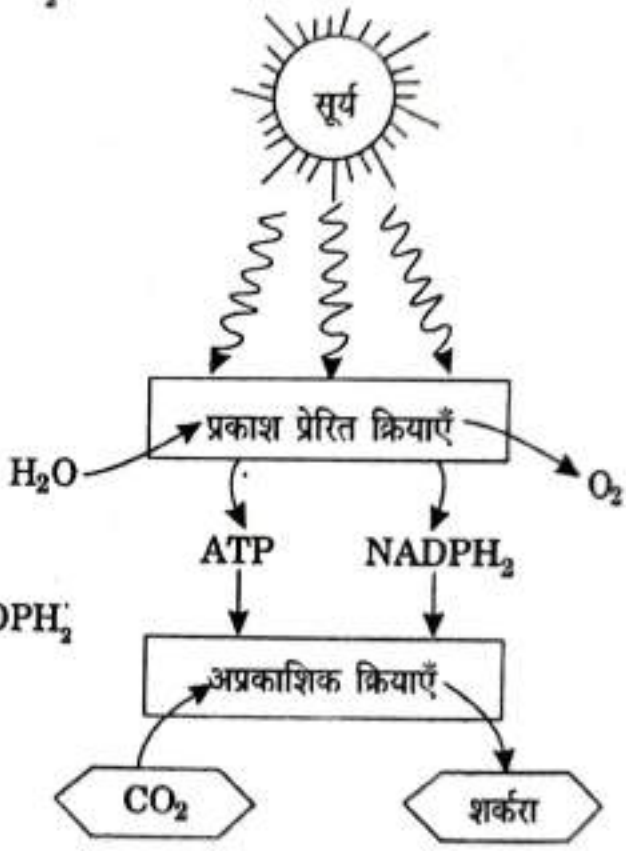

2. अप्रकाशित अभिक्रिया अथवा केल्विन चक्र (Dark Reaction of Kelvin cycle)–इस अभिक्रिया का अध्ययन सर्वप्रथम ब्लैकमेन (blackman) नामक वैज्ञानिक ने किया था, इसलिए इसे ब्लैकमेन अभिक्रिया भी कहते हैं। यह अभिक्रिया हरितलवक के स्ट्रोमा में होती है। इसमें प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। इस अभिक्रिया में CO_2 के अपचयन से कार्बोहाइड्रेट बनता है। यह अभिक्रिया निम्न चरणों में होती है–

1. CO_2 के 6 गुण कोशिकाओं में उपस्थित रिबुलोज डाइफॉस्फेट (RDP) से संयोग करके 12 गुण फास्फोग्लिसरिक अम्ल (PGA) बनाते हैं।
2. फास्फोग्लिसरिक अम्ल $NADPH_2$ से हाइड्रोजन प्राप्त करके फॉस्फोग्लिसरेल्डीहाइड (PGAL) से परिवर्तित हो जाता है तथा NADP पुनः प्रकाश अभिक्रिया में उत्पन्न हाइड्रोजन आयनों को ग्रहण करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।

3. फास्फोग्लिसरेल्डीहाइड अणुओं में 10 अणु पुनः RDP में बदल जाते हैं तथा शेष दो अणु हैक्सोज शर्करा-ग्लूकोस बनाते हैं।

$$6CO_2 + 12ATP + 12NADPH_2 \longrightarrow C_6H_{12}O_6 + 12ATP + 12NADP + 6H_2O$$

इस संपूर्ण चक्र को केल्विन चक्र कहते हैं।

प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक पदार्थ *(Necessary Material for Photosynthesis)*

पौधों को भोजन निर्माण के लिए निम्नलिखित पदार्थों की आवश्यकता होती है–

प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ–पौधों को भोजन निर्माण के लिए निम्नलिखित कच्चे पदार्थों की आवश्यकता होती है–

1. सूर्य का प्रकाश 2. कार्बन डाइऑक्साइड 3. जल अथवा पानी

1. प्रकाश (Light)–प्रकाश संश्लेषण के लिए सूर्य का प्रकाश आवश्यक है। इसकी अनुपस्थिति में तथा रात्रि के समय प्रकाश संश्लेषण नहीं होता है, परंतु प्रकाश के कुछ कृत्रिम स्त्रोतों से कुछ सीमा तक यह क्रिया हो सकती है। जैसे बैंगनी, नीला तथा लाल रंग के प्रकाश में पौधा प्रकाश संश्लेषण कर सकता है। लाल प्रकाश में प्रकाश संश्लेषण सबसे अधिक होता है तथा नीले रंग के प्रकाश में सबसे कम होता है। अन्य रंग की किरणें प्रकाश संश्लेषण के लिए अनुपयोगी होती हैं।

प्रयोग 1. प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रकाश आवश्यक है।

सामग्री : गमले में लगा पौधा, काला कागज, विलयन आदि।

प्रयोग–गमले में लगे पौधे को 48 घंटे के लिए अंधेरे स्थान पर रखते हैं ताकि इसकी पत्तियाँ मंड रहित हो जाएँ। अब इस पौधे की कुछ पत्तियों की दोनों सतहों को क्लिप की सहायता से काले कागज से ढक देते हैं ताकि इस पर सूर्य का प्रकाश न पड़े। इस पौधे को 6 घंटे के लिए धूप में रख देते हैं। ढकी पत्ती को पौधे से अलग करके क्लोरोफिल रहित करने के लिए एथिल ऐल्कोहॉल में उबालते हैं। इस रंगहीन पत्ती को आयोडीन के हल्के घोल में रखने पर आप देखेंगे कि पत्ती के वे भाग जिन पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ा, आयोडीन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इससे स्पष्ट है कि मंड पत्ती के केवल उन्हीं भागों में बना, जिस पर प्रकाश पड़ता है।

निष्कर्ष–इससे निष्कर्ष निकलता है कि प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रकाश आवश्यक है।

अन्य प्रयोग–प्रकाश के महत्त्व को हम दो गमलों वाले प्रयोग से भी सिद्ध कर सकते हैं। इसके लिए दो गमलों को 48 घंटे तक अंधेरे स्थान में रखकर इनकी पत्तियों को मंड रहित कर लिया जाता है। इसमें से एक गमले को काले कपड़े से ढककर तथा दूसरे को खुला रखते हैं। 4-5 घंटे बाद दोनों पौधों की पत्तियों पर मंड परीक्षण करने पर केवल खुले हुए गमले की पत्ती आयोडीन के घोल में नीली पड़ जाती है काले कपड़े से ढके हुए गमले की पत्ती को प्रकाश नहीं मिला था और स्टार्च न बनने से वह नीली नहीं पड़ी।

निष्कर्ष–इससे यह स्पष्ट होता है कि संश्लेषण के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है।

चित्र : प्रकाश-संश्लेषण में प्रकाश के महत्त्व का प्रदर्शन

प्रयोग 2. प्रकाश संश्लेषण में ऑक्सीजन निकलती है।

सामग्री : बीकर, फनल, जलीय पौधा (हाइड्रिला), परखनली, पानी।

प्रयोग–हाइड्रिला या अन्य कोई जलीय पौधा पानी से भरे बीकर में रखकर कीप से ढक दो। बीकर के पानी में कुछ ग्राम सोडियम बाइकार्बोनेट मिला दो, जिससे पौधे को CO_2 मिलती रहे। इस उपकरण को धूप में रख दो। थोड़ी देर में आप देखेंगे कि ऑक्सीजन के बुलबुले हाइड्रिला के पौधे से निकलकर उल्टी खड़ी की गई परखनली में जाते हैं। इस उपकरण को धूप में रख दो तथा इसका पानी नीचे की ओर गिरना आरंभ कर देता है। परखनली को हटाओ और एक जलती हुई तीली द्वारा गैस की परीक्षा करो। तीली को इसमें डालने पर आप देखेंगे कि यह और तेजी से जलने लगती है।

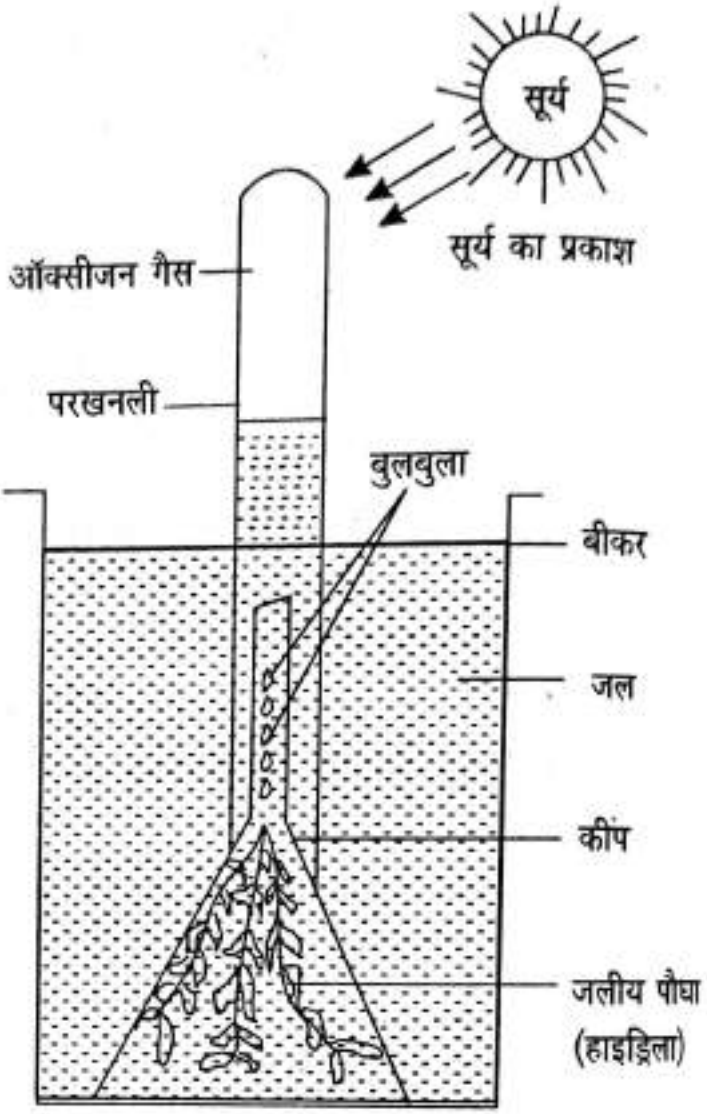

चित्र : प्रकाश-संश्लेषण में ऑक्सीजन निकलती है, को दिखाने के लिए एक प्रयोग

निष्कर्ष–इससे सिद्ध होता है कि प्रकाश-संश्लेषण में ऑक्सीजन बाहर निकलती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया होती है।

पर्णहरित का योगदान (Contribution of cholorophyll)–पर्णहरित या क्लोरोफिल हरे रंग का वर्णक है जो मुख्य रूप से पत्तियों में मिलता है। केवल उन्हीं कोशिकाओं में प्रकाश-संश्लेषण होता है, जिनमें पर्णहरित होता है। यह हरित लवकों में मिलता है। क्योंकि पर्णहरित मुख्य रूप से पत्तियों में पाया जाता है। अतः इन्हें प्रकाश संश्लेषी अंग कहते हैं। क्लोरोफिल में ही सौर ऊर्जा को शर्करा में रासायनिक ऊर्जा के रूप में बाधित करने का गुण होता है।

प्रयोग 3. प्रकाश संश्लेषण के लिए क्लोरोफिल आवश्यक होता है।

प्रयोग–क्रोटन (Croton) या कोलियस (coleus) के पौधे की किसी एक चितकबरी पत्ती का कागज पर चित्र बनाते हैं और उसके हरे, रंगीन व सफेद प्रदेशों को अंकित कर लेते हैं। पत्तियों को मंड रहित करने के लिए गमले को दो-तीन दिनों तक अंधेरे में रखते हैं। अब गमले को तेज धूप में रखते हैं 4 घंटे बाद एक-दो पत्तियों को तोड़कर ऐल्कोहॉल में उबालकर मंड के लिए आयोडीन द्वारा परीक्षण करते हैं। आप देखंगे कि आयोडीन से पत्ती के केवल हरे प्रदेश ही नीली होते हैं, क्योंकि क्लोरोफिल की उपस्थिति के कारण केवल इन्हीं स्थानों में मंड बनता है। पत्ती के भागों में जहाँ दूसरे रंग की धारियाँ थीं, वहां का रंग नीला नहीं, पड़ता क्योंकि उन स्थानों पर मडं नहीं बना था।

निष्कर्ष–इसका अर्थ है कि पत्तियों में मंड केवल उन्हीं स्थानों में बनता है जहाँ क्लोरोफिल होता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकाश-संश्लेषण के लिए क्लोरोफिल आवश्यक होता है।

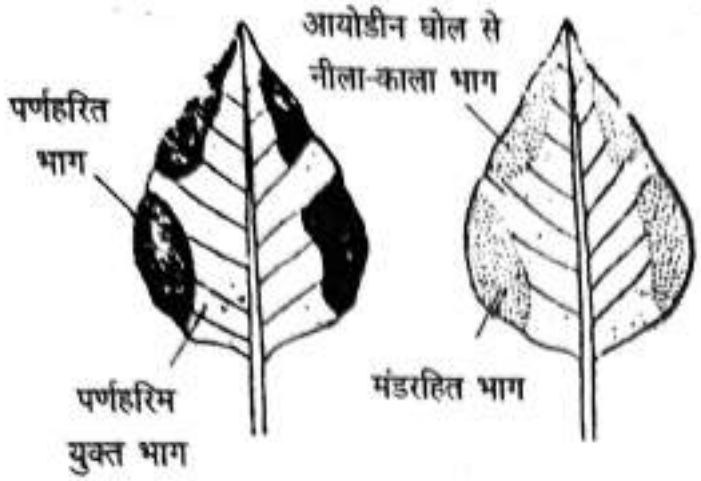

चित्र : प्रकाश-संश्लेषण में क्लोरोफिल के महत्त्व का प्रदर्शन

प्रयोग 4. प्रकाश संश्लेषण के लिए कार्बन डाइऑक्साइड आवश्यक है।

प्रयोग–मंड की उपस्थिति के लिए आधी पत्ती वाला मोल का प्रयोग–चौड़े मुंह की बोतल में KOH का घोल भरो। बोलत की कार्क को दो भागों में काटकर दोनों भागों के बीच पत्ती को दबाकर इस प्रकार बोतल में डालिए कि पत्ती का आधा भाग बोतल में बाहर रहे। इस उपकरण को 3-4 घंटे तक धूप में रखते हैं। क्लोरोफिल हटाने के लिए पत्ती को एथिल ऐल्कोहॉल में उबालिए। थोड़ी देर में पत्ती रंगहीन हो जाएगी। पत्ती को गर्म पानी से धोने के बाद आयोडीन घोल में डालो। आप देखेंगे कि पत्ती का वह भाग जो बोतल के बाहर था नीला हो गया है, किन्तु पत्ती के बोतल के अंदर वाले भाग पर आयोडीन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण यह है कि बोतल के अंदर की वायु की CO_2 ने KOH के साथ संयोग कर लिया। CO_2 न मिलने के कारण इस भाग में मंड नहीं बना।

निष्कर्ष–इससे पता चलता है कि प्रकाश-संश्लेषण के लिए कार्बन डाइऑक्साइड की आवश्यकता है।

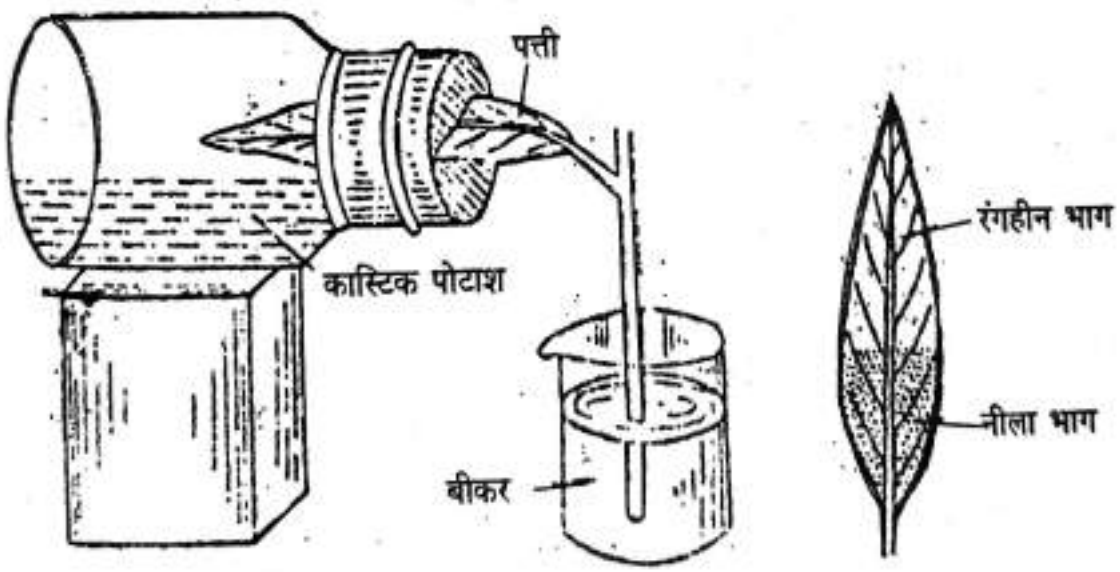

चित्र : मोल का प्रयोग

प्रकाश संश्लेषण का महत्त्व
(Importance of photosynthesis)

1. भोजन एवं अन्य पदार्थ (Food and other Products)–प्रकाश संश्लेषण मनुष्य के लिए ही नहीं, अपितु समस्त जीवधारियों के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। इसी क्रिया द्वारा पृथ्वी पर जीवन निर्भर है। प्रकाश संश्लेषण द्वारा जल व CO_2 जैसे सरल अकार्बनिक यौगिकों से जटिल कार्बनिक पदार्थों का निर्माण

होता है। वास्तव में हरे पौधे फैक्ट्री की भांति कार्य करते हुए कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन व वसाएँ आदि बनाते हैं। मांस, दूध व अंडे हमें जंतुओं से प्राप्त होते हैं, किन्तु अवरोध रूप से ये भी पादपों की देन है। खेती पर प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया पर निर्भर करती है। प्रकाश संश्लेषण के फलस्वरूप ही हमें पौधों से एल्कलॉयड, रबड़ व सेलुलोज आदि अनेक औद्योगिक महत्त्व की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।

2. ऊर्जा का स्त्रोत (Source of energy)–प्रकाश संश्लेषण प्रकाश ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा के रूप में परिवर्तित करने की एक अनूठी विधि है। हरे पौधे की सूर्य की प्रकाश ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बनिक यौगिकों में रासायनिक ऊर्जा के रूप में संग्रहित कर लेते हैं। लकड़ी, कोयला व पेट्रोलियम आदि जो ऊर्जा के प्रमुख स्त्रोत हैं, वास्तव में वनस्पति के ही अवशेष हैं जो भू-वैज्ञानिक काल में भूमि में दब गई थीं। इन पदार्थों में संग्रहित ऊर्जा सूर्य के प्रकाश की विकिरण ऊर्जा है, जो उस काल में पादपों ने प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा बंदी बना ली थी।

3. वायुमंडल का शुद्धिकरण (Purification of Atmosphere)–पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा वायुमंडल को स्वच्छ बनाकर जीवन के लिए उपयुक्त बनाए रखते हैं। आप जानते हैं कि सृष्टि के समस्त जीव श्वसन करते हैं और O_2 ग्रहण करके CO_2 बाहर निकालते हैं। इसके अतिरिक्त ईंधन के जलने से भी CO_2 की एक बड़ी मात्रा वायुमंडल में चली जाती है। पौधे इस CO_2 का प्रकाश संश्लेषण में उपयोग करके O_2 बाहर निकालते हैं और इस प्रकार वायुमंडल को दूषित होने से बचाकर स्वच्छ बनाए रखते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि मनुष्य व अन्य जीवधारियों का अस्तित्त्व प्रकाश संश्लेषण पर ही निर्भर करता है।

ए.टी.पी. ऊर्जा यौगिक (A.T.P. energy compound)–प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में कार्बन डाइऑक्साइड, जल, पर्णहरित तथा सूर्य के प्रकाश के अतिरिक्त अनेक विकार या एंजाइम्स तथा रसायनिक पदार्थ भाग लेते हैं। इनमें से NADP तथा ATP प्रमुख हैं।

NADP (निकोटिनामाइड एडिनीन डाइन्यूक्लिओराइड फॉस्फेट) एक हाइड्रोजन ग्राही है, जो हाइड्रोजन को ग्रहण करके NADP.2H बनाता है। यह हाइड्रोजन के साथ कार्बन डाइऑक्साइड के अपचयन से पुनः NADP में परिवर्तित हो जाता है।

एडिनोसीन की राइबोस शर्करा से फॉस्फेट अणु के जुड़ने से एडिनोसीन मोनोफॉस्फेट (AMP) बनता है। इसमें बने बंध से ऊर्जा संचित रहती है। इसे निम्न ऊर्जा बंध कहते हैं। ANP में दूसरा फास्फेट ग्रुप जुड़ने पर एडिनोसीन डाइफॉस्फेट (ADP) कहते हैं। इसमें उच्च ऊर्जा बंध होता है। ADP से तीसरे फॉस्फेट ग्रुप का संघनन होने से एडीनोसीन ट्राइफॉस्फेट (ATP) का निर्माण होता है। इसमें दो ऊर्जा बंध होते हैं।

जब भी किसी अभिक्रिया के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, ATP टूटकर पुनः ADP + P में परिवर्तित हो जाता है तथा ऊर्जा इस्तेमाल के लिए मुक्त हो जाती है।

$$ATP \longrightarrow ADP + P + \text{ऊर्जा}$$

इस प्रकार ATP कोशिका में विभिन्न प्रक्रियाओं के बीच ऊर्जा समन्वय स्थापित करता है।

प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारक *(Factors Affecting photosynthesis)*

प्रकाश संश्लेषण की दर अनेक बाह्य तथा अन्तः कारकों से प्रभावित होती है। ये कारण निम्नलिखित हैं–

बाह्य कारक (External factors)–प्रकाश, ताप, वायु, जल, प्राप्त खनिज आदि प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करते हैं–

1. प्रकाश (Light)–सूर्य का प्रकाश संश्लेषण के लिए ऊर्जा देता है। विद्युतीय प्रकाश में भी प्रकाश संश्लेषण होता है।

(i) नीले व लाल प्रकाश से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सबसे अधिक गति से होती है।

(ii) इंफ्रारेड प्रकाश में प्रकाश संश्लेषण की दर कम हो जाती है। इसे रेड-ड्रॉप (red drop) कहते हैं।

(iii) कम तीव्रता का प्रकाश अधिक समय तक दिए जाने पर प्रकाश संश्लेषण अधिक होता है।
(iv) प्रकाश की तीव्रता बढ़ने पर प्रकाश संश्लेषण की दर भी बढ़ती है।
(v) हरे रंग की प्रकाश किरणें पक्षी पत्ती में अवशोषित नहीं होती हैं।

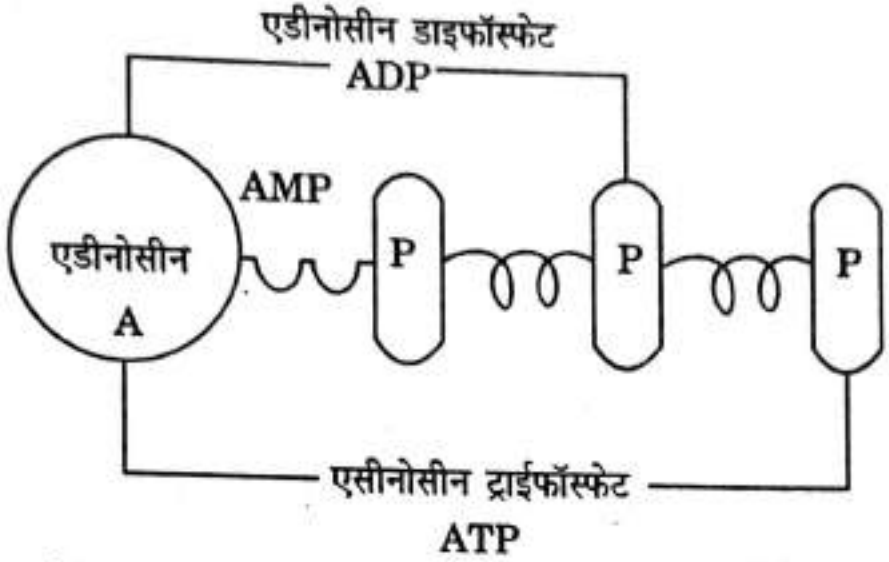

चित्र : ऊर्जा सिक्का—ए.डी.पी., ए.टी.पी., (ADP, ATP) तथा उसके विभिन्न बंध

2. तापमान (Temperature)–10°C से 35°C के बीच का तापमान प्रकाश संश्लेषण के लिए उपयुक्त माना जाता है। यदि सभी कारक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों तो प्रत्येक 10°C वृद्धि पर प्रकाश संश्लेषण की दर दोगुनी हो जाती है। किन्तु 40°C के बाद और अधिक तापमान में वृद्धि होने पर प्रकाश संश्लेषण में कमी आ जाती है।

3. जल (Water)–जल की कमी का प्रकाश संश्लेषण की दर पर प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों प्रकार से प्रभाव पड़ता है। निश्चित मात्रा से कम जल जलने पर प्रकाश संश्लेषण की दर कम हो जाती है। साथ ही पानी की कमी के कारण सभी जैविक क्रियाएँ भी धीमी हो जाती हैं और प्रकाश संश्लेषण की गति भी धीमी हो जाती है।

4. खनिज लवण (Minerals)–Fe तथा Mg खनिज पर्णहरिम (chlorophyll) के संश्लेषण के लिए जरूरी है। इनकी कमी से पर्णहरिम की कमी होगी जिससे प्रकाश संश्लेषण भी कम होगा।

अन्तः कारक (Internal factors)–पत्ती की संरचना, स्टोमेटा की स्थिति, संरचना संख्या एवं विवरण तथा पेलिसेड कोशिकाओं में पर्णहरिम की मात्रा भी प्रकाश संश्लेषण की गति को प्रभावित करते हैं।

12. आनुवंशिकता किस जीव वैज्ञानिक का विचार है?
(Heredity is the thought of which scientist?)

अथवा

मेण्डल के मटर पर प्रयोग का वर्णन कीजिए।
(Describe the Mendel's experiment on garden pea.)

उत्तर–आनुवंशिकता (Heredity)–सभी जीव अपने ही समान संतान उत्पन्न करते हैं, जैसे गाय बछड़े को, कुत्ता पिल्ले को और हाथी हाथी के बच्चे को जन्म देता है। इस प्रकार मटर के दाने से मटर का पौधा, निबौली से नीम का वृक्ष तथा आम की गुठली से आम का वृक्ष बनता है। अतः जीवन में कुछ लक्षण ऐसे होते हैं, जो माता-पिता की संतान में आते हैं, और उन्हीं के कारण, माता-पिता व उनकी संतान में समानता होती है। संतानों में उनके माता-पिता से प्राप्त इस प्रकार के लक्षणों को आनुवंशिक लक्षण या वंशागत लक्षण (hereditary characters) तथा संतान में माता-पिता से लक्षणों के वंशागत होने को वंशगति या आनुवंशिकता (heredity or inheritance) कहते हैं। विज्ञान की उस शाखा को जिसमें आनुवंशिक लक्षणों के माता-पिता से संतान में आने की रीतियों का अध्ययन करते हैं, आनुवंशिकी या जैनेटिक्स (genetics) कहते हैं।

कुछ लक्षणों के समान होने पर भी संतान आपस में या अपने माता-पिता के बिल्कुल समान नहीं होती। इनमें कुछ न कुछ व्यक्तिगत भिन्नताएँ (Variations) अवश्य ही होती हैं। इनके कारणों का अध्ययन भी आनुवंशिकी में किया जाता है।

मेण्डल : आनुवंशिकी के जनक
(Mendal : Father of Genetics)

जीवों में वंशागति का मूल आधार यह है कि प्रत्येक जीवन की सभी संतान अपने माता-पिता से समान मात्रा में आनुवंशिक पदार्थ प्राप्त करती है। हम जानते हैं कि यह आनुवंशिक पदार्थ DNA है। अतः सभी संतति जीवों को प्रत्येक लक्षण के लिए दो विकल्प होते हैं किन्तु सामान्यतः इन दोनों विकल्पों या DNA प्रारूपों में से केवल एक ही लक्षण को प्रभावित करता है, दूसरा नहीं। मेण्डल ने सन् 1900 में लक्षणों के इन विकल्पों को वंशागति के नियम प्रस्तुत किए थे। इसके कारण ग्रेगर जॉन मेण्डल को 'आनुवंशिकी का जनक' कहा जाता है। मेण्डल का जन्म सन् 1822 ई. में आस्ट्रेलिया देश के ब्रून शहर (Brum city) में एक किसान परिवार में हुआ था। माध्यमिक शिक्षा लेने के बाद सन् 1847 में मेण्डल ब्रून शहर के एक गिरजाघर में पादरी हो गए। अपने अवकाश के समय में गिरजाघर के बगीचे में मटर के पौधों में संकरण के अपने अनेक प्रयोग मेण्डल ने किए। लगातार आठ वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद इन प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर मेण्डल ने 1866 में आनुवंशिकी के नियमों की खोज की किन्तु उनके जीवनकार्य में वैज्ञानिकों ने इसके महत्त्व को नहीं पहचाना। सन् 1900 में तीन जीव, वैज्ञानिकों डीवेरीज, शैमार्क व कौरना ने इन नियमों की पुनः खोज की।

मेण्डल का मटर पर प्रयोग
(Mendal's experiments on garden pea)

मेण्डल ने संकरण प्रयोग के लिए मीठी मटर (Pisrum sativum) को चुना। उन्होंने मटर के पौधों में सात जोड़ी विपरीत लक्षणों की वंशागति का अध्ययन किया। किन्तु एक समय पर उन्होंने दो विपरीत लक्षणों की वंशागति पर अपना ध्यान केंद्रित रखा। उन्होंने दो विपरीत लक्षणों वाले मटर के पौधों में कृत्रिम परागण द्वारा संकरण कराया। इससे बने संकर पौधे दो मूल पौधों में से एक के समान थे। संकर पौधों में आपस में संकरण कराने पर जो संतति पौधे बने उनमें से कुछ एक मूल पौधे (जनक) के समान तथा कुछ दूसरे मूल पौधे (जनक) के समान थे एवं उनकी संख्या में 3:1 का निश्चित अनुपात था। मेण्डल ने सात जोड़ी विपर्यासी लक्षणों का चयन किया। सौभाग्य से ये सभी लक्षण प्रभावी व अप्रभावी थे। इन लक्षणों को तालिका में दिखाया गया है।

इन विपरीत लक्षणों को युग्मविकल्पी या एलिलोमार्फ (allelomorph) कहते हैं। प्रत्येक युग्म के दोनों गुणों जैसा लंबा व बौनापन एक-दूसरे के युग्मविकल्पी (allele) हैं।

मेण्डल के प्रयोगों में लिए गए जनक पौधों को पैतृक पीढ़ी कहते हैं तथा इसे P_1 द्वारा निरूपित करते हैं। जनक पौधों में संकरण से बने संतति पौधे प्रथम संतनीय पीढ़ी कहलाते हैं और इसे F_1 द्वारा निरूपित करते हैं। F_1 पीढ़ी के पौधों में स्व-परायण द्वारा बने पौधों को द्वितीय संतनीय पीढ़ी कहते हैं और इसे F_2 द्वारा निरूपित करते हैं।

तालिका 1 : मटर के पौधे के सात जोड़ी विपर्यासी लक्षण

1.	तने की लंबाई	लम्बापन	बौनापन
2.	पुष्पों की स्थिति	अक्षीय	अग्रस्थ
3.	फली का रूप	चपटा (Inflated)	संकर्णित (constricted)
4.	फली का रंग	हरा	पीला
5.	बीज की आकृति	गोल	झुर्रीदार
6.	बीज पत्रों का रंग	पीला	हरा
7.	बीज चोल का रंग	धूसर	श्वेत

8. समस्या समाधान विधि का क्या अर्थ है? समस्या समाधान के पदों का विवरण दें। इस विधि के गुणों और दोषों का वर्णन करें।
(What is the meaning of Problem Solving Method? Discuss the steps involved in problem solving. Describe merits and demerits of this method.)

अथवा

"समस्या-समाधान विधि" की व्याख्या कीजिए।
(Explain the "Problem Solving Method".)

अथवा

जीव विज्ञान शिक्षण में समस्या समाधान विधि की व्याख्या कीजिए। इसके गुण व दोषों का विवरण दीजिए।
(Explain problem solving method of teaching life science. Discuss its merits and demerits.)

अथवा

जीव विज्ञान शिक्षण में समस्या-समाधान पाठ्य-विधि की व्याख्या कीजिए। माध्यमिक कक्षाओं के लिए यह विधि किस प्रकार अनुकूल है?
(Explain the problem solving method of teaching of life science? How is this method suitable for secondary classes?)

अथवा

'समस्या-समाधान विधि' से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न सोपान कौन-कौन से हैं? उपयुक्त उदाहरण द्वारा सविस्तार समझाइए।
(What do you understand by 'Problem Soving method' ? What are its different steps? Explain in detail with suitable example.)

उत्तर–समस्या समाधान विधि छात्रों की मानसिक क्रिया से सम्बन्धित है। इस विधि में छात्र स्वयं समस्या का चयन करते हैं। छात्र अपनी तार्किक शक्ति और विचारों के आधार पर अपनी बुद्धि से समस्या का हल ढूढ़ते हैं और नया ज्ञान प्राप्त करते हैं।

'वुडवर्थ' के अनुसार जब किसी उद्देश्य की प्राप्ति में किसी प्रकार की बाधा पड़ती है। तब समस्या का समाधान प्रकट होता है। यदि हमारे लक्ष्य का मार्ग सीधा तथा आसान हो तो समस्या आयेगी ही नहीं।

'गेट्स तथा अन्यों' के अनुसार समस्या समाधान में उचित स्तर की खोज होती है। समस्या समाधान शिक्षण का एक रूप है।

'स्किनर' के अनुसार समस्या समाधान प्रक्रिया में सृजनात्मक चिन्तन तथा तर्क सम्बन्धी कार्य होते हैं।

समस्या वास्तव में वह परिस्थिति है, जिसमें व्यक्ति के पास कोई समाधान नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति को समस्या का सामना करने के लिए साधन जुटाने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में बहुत-सी बातों के बारे में सोचना पड़ता है। जब व्यक्ति को समस्या का एहसास नहीं होता, तो वह कुछ भी नहीं करता।

कभी-कभी व्यक्ति को समस्या ठीक ढंग से समझ में नहीं आती तो उसका हल ढूढ़ने में अधिक कठिनाई होती है। कार्य में बाधा उत्पन्न करने वाली कठिनाइयों का हल ढूढ़ना ही समस्या का समाधान कहलाता है। जैसी समस्या होती है, उसी के अनुसार समस्या का समाधान ढूढ़ा जाता है।

परियोजना विधि में कार्य को व्यावहारिक रूप से समाप्त करने के बाद ही समस्या का समाधान ढूढ़ा जाता है, जबकि इस विधि में बुद्धि से समस्या का समाधान ढूढ़ना होता है। समस्या समाधान विधि में छात्रों को उनकी समस्याओं का हल ढूढ़ने सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाता है। समाज की समस्याएं उनसे सम्बन्धित नहीं हैं।

सी. वी. गुड के अनुसार समस्या समाधान विधि द्वारा छात्र चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरित होता है। यह एक ऐसी विधि है जिसमें छोटी-छोटी समस्याओं के सामूहिक समाधान से किसी बड़ी समस्या का समाधान किया जा सकता है।

जार्ज जानसन ने लिखा है, कि मस्तिष्क के सामने वास्तविक समस्याएं उत्पन्न करके मस्तिष्क को अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया जाता है। मस्तिष्क को समस्याओं का समाधान ढूढ़ने का उचित अवसर प्रदान किया जाता है।

विद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया जाता है जिससे छात्रों के सामने वास्तविक समस्या उत्पन्न हो सके। जीव-विज्ञान शिक्षण में कुछ ऐसी इकाइयाँ बनाई जाती हैं जिनके द्वारा छात्रों के सामने समस्याएं उत्पन्न हों। समस्या छोटी या बड़ी किसी भी प्रकार की हो सकती है।

समस्या समाधान विधि में मस्तिष्क द्वारा दिए गए निर्णयों पर ही जोर दिया जाता है। इस विधि में समस्या को विशेष स्थिति में हल किया जाता है। इस विधि के प्रयोग से छात्रों को यह सिखाया जाता है कि वे समस्या को अपनी समझ कर हल करें। अर्थात् छात्र समस्या में अपनत्व अनुभव करें। छात्रों द्वारा समस्या समाधान के लिए किए गए सभी प्रयत्न उद्देश्यपूर्ण होते हैं।

समस्या समाधान विधि की विशेषताएँ

(1) इस विधि में एक विशेष लक्ष्य होता है, इसलिए इसे लक्ष्य केन्द्रित कहा जाता है। लक्ष्य द्वारा ही समस्या को दूर किया जाता है।

(2) यह विधि अनुपात या प्रयोगात्मक समस्या का मूल्यांकन ठीक प्रकार से करने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार समस्या समाधान विधि आलोचनात्मक है।

(3) इस विधि में विचारों को पुनर्गठित किया जाता है, इसलिए इसे सृजनात्मक कहा जाताहै।

(4) यह विधि सूझ-बूझ पूर्ण वाली विधि है। इसमें चयनात्मक और उचित अनुभवों का पुनर्गठन सम्पूर्ण हल में किया जाता है।

(5) इस विधि की प्रक्रिया चयनात्मक है क्योंकि सही हल ढूढ़ने के लिये चयन तथा सही अनुभवों का स्मरण किया जाता है।

समस्या समाधान विधि के सोपान या चरण

(1) समस्या का चयन–अध्यापक सबसे पहले जीव-विज्ञान विषय के उन प्रकरणों को सलेक्ट करें, जो समस्या समाधान विधि से पढ़ाये जाते हैं क्योंकि सभी प्रकरण समस्या समाधान विधि से नहीं पढ़ाए जा सकते।

(3) **समस्या से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करना**–साधन यदि स्पष्ट नहीं हों तो हम जितना लाभ ... प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए समस्या से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करना भी आवश्यक है।

(3) **समस्या का महत्त्व**–यह पद अति महत्त्वपूर्ण है। जब तक विद्यार्थी समस्या में रुचि नहीं लेंगे तब तक उसका सही हल नहीं निकल सकता। यदि छात्रों को समस्या के बारे में और उसके महत्त्व के बारे में ... नहीं होगा तो वे समस्या में कभी रुचि नहीं लेंगे।

(4) **तथ्यों की जांच**–तथ्यों की जांच बहुत आवश्यक है। इस विधि में समस्या के महत्त्व को समझने के बाद समस्या से सम्बन्धित तथ्यों की जांच की जाती है। इसके बाद यह पता लगाया जाता है कि उनमें से कौन-कौन तथ्य समस्या के अनुरूप है तथा किन तथ्यों को स्वीकृत किया जाता है और किन तथ्यों को अस्वीकार किया जाता है। तथ्यों की जांच करने के बाद ही समस्या का हल निकालने का प्रयत्न किया जाता है। किसी समस्या को कई प्रकार से हल कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी और अध्यापक दोनों मिलकर समस्या का हल ढूंढने का प्रयत्न करते हैं। तथ्यों पर आलोचनात्मक विश्लेषण, समालोचन तथा विचार-विमर्श किया जायेगा और इसके बाद निष्कर्ष पर पहुंचा जायेगा।

(5) **निष्कर्ष निकालना**–सामान्यीकरण से निष्कर्षों के सत्यापन में सहायता मिलती है। तथ्यों की जांच करने के बाद उनका सामान्यीकरण करना आवश्यक होता है। सामान्यीकरण से यह जानने में सहायता मिलती है कि प्राप्त निष्कर्षों को प्रयोग में लाया जा सकता है या नहीं। अतः तथ्यों की जांच करने के बाद निष्कर्ष निकालना आवश्यक है।

(6) **समस्या का लेखा-जोखा रखना और निष्कर्षों का मूल्यांकन**–समस्या के समाधान के लिए व्यक्ति जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है या जो परिणाम निकलता है, उसका मूल्यांकन किया जाता है। इसमें समस्या का लेखा-जोखा निकाला जाता है। यह समस्या का अन्तिम चरण होता है।

समस्या समाधान विधि के लाभ

समस्या समाधान विधि के निम्नलिखित लाभ हैं–

(1) छात्र अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए सदा तैयार रहता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में समस्याएं आती हैं। विद्यालय में समस्याओं के समाधान करने में निपुण होने के बाद छात्र ऐसी स्थिति में आ जाते हैं कि वे जीवन में आने वाली समस्याओं से लड़ना सीख जाते है।

(2) इससे छात्रों में स्वाध्याय की आदत उत्पन्न होती है जो जीवन में लाभदायक होती हैं। इससे छात्र अध्ययन के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहता। यह विधि स्वाध्याय की आदत के निर्माण में सहायक है।

(3) समस्या समाधान विधि द्वारा छात्र तथ्यों को एकत्रित करना सीखते हैं तथा तथ्यों को एकत्रित करने के पश्चात् उन्हें एकत्रित करना सीखते हैं। यह विधि विशेष रूप से शोध कार्यों के लिए महत्त्वपूर्ण है।

(4) इस विधि में प्रत्येक छात्र समस्या का हल ढूढ़ने में ही लगा रहता है, इससे अनुशासन बना रहता है। इससे अनुशासनप्रियता बढ़ती है। छात्रों अनुशासन भंग करने का अवसर ही नहीं मिलता।

(5) इस विधि से छात्रों में कुशलता, उत्तरदायित्व, सहनशीलता, व्यावहारिकता, व्यापकता, गम्भीरता, दूरदर्शिता आदि अनेक गुणों का विकास होता है।

(6) समस्या समाधान विधि से छात्र मुद्रित पाठों का अन्धानुकरण नहीं करते। इस विधि से छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भावना उत्पन्न होती है। वे पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रहते।

(7) छात्र जब स्वयं समस्या का हल ढूढ़ते हैं तो इससे प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है।

(8) छात्र तथा अध्यापक एक-दूसरे के निकट आते हैं। समस्या प्रधान विधि में अध्यापक एक पथ-प्रदर्शक की भूमिका निभाता है। विद्यार्थी समस्या का समाधान ढूढ़ने के लिए अध्यापक से सहायता लेता है। इस प्रकार दोनों में सम्पर्क बढ़ता है।

समस्या समाधान विधि के दोष

इस विधि के निम्नलिखित दोष हैं-

(1) इस विधि में छात्रों को बहुत अधिक सहायक सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। जो उपलब्ध नहीं हो पाती। कभी-कभी तो इससे सम्बन्धित पुस्तकें पुस्तकालय में उपलब्ध ही नहीं होती।

(2) समय अधिक खर्च होता है। इसमें समस्या ढूंढने में अधिक समय लगता है तथा यह डर रहता है कि पाठ्यक्रम पूरा होगा भी या नहीं।

(3) इस विधि में विद्यार्थी सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का अध्ययन न कर केवल कुछ चुने हुए अंश का अध्ययन करते हैं, जो उनकी समस्या से सम्बन्धित होता है।

(4) इस विधि का कक्षा में प्रयोग करने से सम्पूर्ण वातावरण नीरस बन जाता है। यदि किसी समस्या में अधिक समय लग जाए तो विद्यार्थी की रुचि समाप्त हो जाती है।

(5) समस्या का चयन करना कठिन कार्य है। प्रत्येक छात्र या अध्यापक यह कार्य नहीं कर पाता।

(6) इस विधि के प्रयोग के लिए योग्य, कुशल तथा अनुभवी अध्यापक होना चाहिए जो कि समस्या का समाधान सावधानी से करा सके। वास्तव में ऐसे अध्यापकों का अभाव ही रहता है।

(7) कभी-कभी कक्षा की समस्याएं, वास्तविक जीवन से भिन्न होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं।

(8) यह विधि प्राथमिक कक्षाओं के लिए उपयोगी नहीं है, क्योंकि प्राइमरी कक्षा के विद्यार्थियों का मानसिक स्तर इतना ऊँचा नहीं होता।

(9) इस विधि से प्रायः सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त नहीं होते। कभी-कभी छात्र व्यर्थ में ही समय नष्ट करा देते हैं। समस्या का निकाला गया हल उस समस्या के साथ ठीक नहीं बैठता।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि समस्या समाधान विधि का प्रयोग उच्च कक्षाओं के लिये ही हो सकता है। यदि ठीक ढंग से इस विधि का प्रयोग किया जाए तो इससे मानसिक कुशलताओं, आदर्शों आदि के विकास में सहायता मिलती है।

◆◆◆

खोज प्रविधि, सहसंबंधात्मक अधिगम व आविष्कारात्मक प्रविधि
(Investigatory Approach, Collaborative Learning and Experimental Learning)

9. निम्नलिखित पर टिप्पणी करें (Write a note on the following-)

(a) खोज प्रविधि (Investigatory approach)

(b) सहसंबंधात्मक अधिगम (Collaborative learning)

(c) आविष्कारात्मक प्रविधि (Experimental learning)

उत्तर-**(a) खोज प्रविधि (Investigatory approach)**-इस नीति में छात्र स्वयं खोज करके सीखते हैं। शिक्षक का कार्य केवल पथ-प्रदर्शक का होता है जो उचित समय पर गलतियाँ सुधारने में सहायता देता है। छात्र जैसे-जैसे कार्य तथा प्रयोग करते जाते हैं वैसे-वैसे ही उन्हें नवीन ज्ञान की प्राप्ति होती जाती है। इस नीति के जन्मदाता प्रो. आर्मस्ट्रांग (Prof. Armstrong) थे। उनके मत के अनुसार, **"किसी भी विषय को सीखने की प्रक्रिया ही अन्वेषण है और छात्रों को विषय संबंधी तथ्यों एवं सिद्धांतों की खोज स्वयं करनी चाहिए।"** इस नीति में छात्र एक अन्वेषणकर्ता की भांति कार्य करता है। छात्र के पास प्रारंभ में प्रयोग संबंधी जानकारी नहीं होती। उसे स्वयं वांछित सूचना या एवं सिद्धांतों की खोज करने के लिए अनेक आवश्यक प्रयोग करने होते हैं, साथ ही प्राप्य साहित्य का अध्ययन करना होता है।

विशेषताएँ–

1. छात्रों में वैज्ञानिक विधि तथा भावना का विकास होता है।
2. छात्रों को यह विधि यथातथ्य (Exact) बनाती है और सत्य के निकट पहुँचाती है।
3. इसमें छात्र की निरीक्षण शक्ति तीव्र होती है तथा विचार प्रक्रिया सक्रिय हो जाती है।
4. परिश्रम करने की क्षमता एवं रुचि का विकास होता है।
5. छात्रों की क्रियाशीलता, आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता बढ़ती है।
6. यह विधि छात्रों को जीवन के लिए तैयार करती है।
7. इसमें प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता है।
8. छात्रों में चिंतन तथा अवबोधन बढ़ता है।
9. सारा कार्य कक्षा में संपन्न हो जाता है, अतः गृहकार्य की आवश्यकता नहीं रहती।

दोष (Demerits)–

1. शिक्षण गति धीमी रहने से पूरा पाठ्यक्रम निर्धारित समय में नहीं पढ़ाया जा सकता।
2. छात्र निष्कर्षों तक पहुँचने में कठिनाई का अनुभव करता है।
3. शिक्षक को इस विधि का प्रयोग करने पर विशेष तैयारी करनी पड़ती है।
4. छोटी कक्षाओं में यह विधि उपयुक्त नहीं है।
5. इस विधि में अच्छी प्रयोगशाला तथा अच्छा पुस्तकालय आवश्यक है।
6. अधिक धन खर्च होता है।
7. बड़े समूहों में इस विधि से शिक्षा देना कठिन है।
8. कमजोर छात्रों के लिए उपयोगी नहीं है।

सुझाव–

1. अन्वेषण विधि का रूप वास्तविक होना चाहिए।
2. पूरे पाठ्यक्रम की अपेक्षा केवल कुछ चुने गए पाठ ही इस विधि से पढ़ाए जाएँ।
3. शिक्षक अपने दायित्व के प्रति पूर्ण रूप से सजग एवं सतर्क रहें।

(b) सहसंबंधात्मक अधिगम (*Collaborative Learning*)

इस विधि के अनुसार विद्यार्थी को एक पृष्ठ पर निर्देश (Instructions) दिए जाते हैं और छात्रों के सम्मुख एक समस्या प्रस्तुत की जाती है। विद्यार्थी निर्देशों के अनुसार समस्या का समाधान करता है। कभी-कभी वह समस्या अपने विषय अध्यापक से पूछ भी लेता है। इस विधि में विद्यार्थी को घूमने की आजादी होती है। वह अपने साथियों से परामर्श ले सकते हैं। अध्यापक का थोड़ा-सा मार्गदर्शन विद्यार्थियों के लिए लाभदायक होता है।

विद्यार्थी निर्देशों के अनुसार काम करते हैं और प्रयोग सम्पन्न करते हैं और रिकार्ड तैयार करते हैं। यहाँ विद्यार्थी समस्याओं का चुनाव वह स्वयं करते हैं, ताकि रुचिपूर्ण ढंग से कार्य किए जा सके।

गुण (Merits)–

1. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास (Development of Scientific Attitude)**–इस विधि द्वारा विद्यार्थियों को जांच करना (Hit and Trail) के माध्यम से कैसे निर्णय तक पहुँचा जाता है, सिखाया जाता है। यह विधि विद्यार्थियों को ईमानदार बनाकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करती है।
2. **आत्म निर्भरता (Self Dependent)**–यह विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी तथा आत्मविश्वासी बनाती है।
3. **मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित (Based on psycological principle)**–यह विधि विद्यार्थियों को मनोविज्ञान के प्रसिद्ध सिद्धांत 'Hearing by doing' पर आधारित है।

4. **ज्ञान की प्राप्ति (Gain of Knowledge)**–इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान अधिक समय तक स्थाई रहता है।
5. **तार्किक सोच (Logical Thinking)**–आंकड़ों और अन्वेषणों की व्याख्या के द्वारा छात्रों में तार्किक सोच का विकास होता है।
6. **परिश्रम की आदत (Habit of diligency)**–इसमें विद्यार्थियों को परिश्रम करने की आदत का विकास होता है।
7. **कोई गृहकार्य नहीं (No worry about homework)**–इस विधि में छात्र अपना कार्य विद्यालय में ही करते हैं, जिससे अध्यापकों को गृहकार्य जांचने की चिंता नहीं रहती है।
8. **व्यक्तिगत ध्यान (Individual Attention)**–छात्र स्वयं ही सारे कार्य करते हैं, जैसे–पुस्तकें पढ़ना, प्रयोग करना, जानकारी एकत्रित करना आदि। इससे अध्यापक सभी विद्यार्थियों पर व्यक्तिगत ध्यान दे सकता है।
9. **कार्य द्वारा सीखने का सिद्धांत पर आधारित (Based on learning by doing)**–यह विधि काम द्वारा सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत पर आधारित है। इसमें विद्यार्थी स्वयं कार्य करता है और ज्ञान प्राप्त करता है।

दोष (Demerits)–

1. **वर्गीकरण की समस्या (Grading Problem)**–इस विधि से वर्गीकरण का कार्य आसान नहीं है। इसके लिए बहुत अधिक कौशल और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
2. **पुस्तकों की कमी (Non availability of books)**–इस प्रणाली के लिए पाठ्य पुस्तकें प्राप्त नहीं। फलस्वरूप अध्यापकों को अधिक काम का बोझ उठाना पड़ता है। पहले ही उन पर काफी बोझा होता है।
3. **लंबी विधि (Lengthy Method)**–अन्वेषण विधि लंबी और जटिल है। इसलिए यह निश्चित पाठ्यक्रम को निश्चित समय में पूर्ण करने के लिए उचित नहीं है।
4. **खर्चीली विधि (Costly Method)**–यह बहुत ही खर्चीली विधि है, क्योंकि इसमें सुसज्जित प्रयोगशालाओं, अच्छे पुस्तकालयों तथा उच्च शिक्षा प्राप्त एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होती है।
5. **छोटे बच्चों के लिए अनुपयोगी (Non useful for tiny tots)**–यह छोटे बच्चों के लिए उपयोगी नहीं है। वे हर चीज को अपने आप खोज नहीं सकते।
6. **अनुसंधान विधि पर बल (Stress of Heuristic Approach)**–इससे अध्यापकों की प्रवृत्ति बन जाती है कि वे विज्ञान के सिद्धांतों पर बहुत बल देते हैं।
7. **प्रयोगात्मक कार्य पर बल (Stress on laboratory work)**–इस विधि में प्रायोगिक कार्यों पर अधिक बल दिया जाता है। छात्र यह विश्वास करने लग जाते हैं कि विज्ञान केवल प्रयोगशाला में करने वाली चीज है। वे भूल जाते हैं कि प्रयोगशाला विज्ञान के लिए बनाई गई है, न कि विज्ञान प्रयोगशाला के लिए।
8. **आधुनिक आविष्कार (Modern Discoveries)**–विद्यार्थियों को सब कुछ अपनी क्रियाओं से सीखना होता है। इसलिए आधुनिक विज्ञान आविष्कारों तथा खोजों के रोमांच की अवहेलना हो जाती है।
9. **आविष्कार (Discoveries)**–छात्रों को प्रयोग और स्वयं क्रिया के द्वारा सभी कुछ स्वयं ही सीखना पड़ता है। अर्जित ज्ञान अपर्याप्त होता है और आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार और उनके अनुप्रयोग विद्यार्थी के ज्ञान से बाहर रह जाते हैं।

(c) आविष्कारात्मक प्रविधि *(Experimental learning)*

जीव विज्ञान अथवा विज्ञान की शिक्षा मौखिक रूप में नहीं दी जा सकती। इसलिए विज्ञान शिक्षण के लिए करके सीखना अथवा क्रिया के आधार पर अनुभव प्राप्त करना और निष्कर्ष निकालना अत्यंत आवश्यक है। प्रारंभ में विज्ञान की शिक्षा अन्य विषयों की भांति मौखिक रूप में ही दी जाती थी। अध्यापक द्वारा बताई गई बातें ही विज्ञान के छात्रों को विज्ञान के तथ्यों से परिचित कराती थी। प्रकृति के सदस्यों की जानकारी बाद में विज्ञान शिक्षण के लिए एक आवश्यक सामग्री समझी जाने लगी। इस विधि के जन्मदाता लंदन के प्रोफेसर आर्मस्ट्रांग (Armstrong) हैं। इसे स्वयं ज्ञान विधि के नाम से भी जाना जाता है। यह विधि विज्ञान-शिक्षण के लिए अत्यंत उपयोगी है। इस विधि में विद्यार्थी को अनुसंधानकर्ता की भूमिका निभानी पड़ती है।

प्रोफेसर आर्मस्ट्रांग के अनुसार, **"विज्ञान का ध्येय अध्यापक के श्री मुख से ज्ञान प्राप्ति नहीं है, अपितु अपने निरीक्षण एवं प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकालना और सिद्धांतों का निर्माण है।"**

इस प्रणाली में छात्र कुछ तथ्यों के ज्ञान को आधार मानकर अपने ढंग से प्रयोग करता है। आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक से परामर्श करता है और अंत में स्वयं किसी निष्कर्ष तक पहुँचता है। इस प्रकार वह जो कुछ सीखता है, उसे भलीभांति आत्मसात कर लेता है। इस अन्वेषण प्रणाली में छात्र को अपनी कार्यक्षमता बढ़ाने के साथ-साथ कल्पना और संभावनाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है। वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों के कुशल प्रयोग द्वारा प्राप्त करता है और समस्या का निवारण करके किसी निश्चित एवं मान्य परिणाम तक पहुँचता है। इस प्रकार छात्रों को स्वतः कार्य हेतु प्रेरित करने एवं चिंतन करने की प्रणाली को ही अन्वेषण प्रणाली या अनुसंधान विधि कहते हैं। अनुसंधान प्रणाली का उद्देश्य छात्रों में ठीक-ठाक निरीक्षण, चिंतन, बुद्धि प्रयोग आदि की प्रवृत्ति उत्पन्न करके आत्म-शिक्षण, जिज्ञासा एवं अनुसंधान की भावना को दृढ़मूल बनाना है।

आविष्कारात्मक विधि का क्रियान्वयन–अध्यापक छात्रों को कोई समस्या दे देता है। कक्षा का प्रत्येक छात्र अपने-अपने ढंग से प्रदत्त कार्य को पूरा करने का प्रयास करता है। विभिन्न स्त्रोतों से तथ्य संग्रह करना, अपने साथियों से विचार-विमर्श करना और अध्यापक द्वारा प्रदत्त निर्देश पत्रों को समझकर काम में लाना प्रत्येक छात्र के लिए आवश्यक हो जाता है। मान लो कि मेढ़क के जीवन-चक्र के अध्ययन की समस्या दी जाती है। इस समस्या के लिए अध्ययन के विषय के अनुरूप कई वर्ग बनाए जाएँगे, जो अपने-अपने क्षेत्र में काम करेंगे। कोई वर्ग मेढ़कों के रहन-सहन और खान-पान का निरीक्षण करके निष्कर्ष निकालकर सामान्य परिणाम निकालेगा, कोई वर्ग मेंढ़क की उत्पत्ति और विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करके अपनी रिपोर्ट तैयार करेगा, कोई वर्ग विविध प्रकार के मेढ़कों के आकार, खान-पान एवं निवास आदि के संबंध में तथ्य प्रस्तुत करेगा और अन्त में पूरी कक्षा अध्यापक की उपस्थिति में संकलित प्रयोगों, तथ्यों, अनुभवों एवं निष्कर्षों के आधार पर अपने-अपने अन्वेषणों की सफलता के विवेचन का आनन्द लेगी। वनस्पतियों के संबंध में भी इस प्रणाली का सफल प्रयोग बालकों में रुचि, कौतूहल, निरीक्षण, परीक्षण, परिकलन एवं निष्कर्ष आदि निकालने में किया जा सकता है। इस प्रणाली द्वारा छात्रों में निरीक्षण, तर्क, विवेचन, तथ्य-संग्रह, निष्कर्ष एवं परिणाम के स्वरूप और महत्त्व को समझने की क्षमता उत्पन्न होती है।

आविष्कारात्मक विधि के गुण (Merits of experimental Method)–

1. यह प्रणाली बाल-मनोविज्ञान के अनुकूल है, क्योंकि इसमें छात्र आत्मक्रिया द्वारा शिक्षा प्राप्त करते हैं।
2. इस प्रणाली से छात्रों में वैज्ञानिक एवं विवेचनात्मक प्रवृत्ति का विकास होता है, जिससे वे सत्य की खोज और भूल-सुधार विधि से उचित निर्णय लेते हैं।
3. छात्र अपनी क्रियाओं द्वारा आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता एवं आत्मनिष्ठा की प्राप्ति करते हैं।
4. छात्रों में परिश्रम और व्यवसाय की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।
5. इस प्रणाली में अध्यापक छात्रों की ओर व्यक्तिगत ध्यान देता है, जिससे अध्यापक और छात्र के बीच आत्मीयता उत्पन्न होती है। गुरु एवं शिष्य में परस्पर सद्भाव का प्रादुर्भाव होता है।

6. इस विधि में छात्र अपने ही अनुभव से ज्ञान प्राप्त करता है, इसलिए वह जो कुछ सीखता है, वह अधिक समय तक याद रहता है।
7. इससे छात्र में वैज्ञानिक विधि से काम करने की आदत पड़ जाती है। अपने सामाजिक जीवन में भी वह किसी समस्या के निराकरण के लिए वैज्ञानिक विधि को अपनाकर तर्कसंगत निर्णय करता है और ग्राह्य तथ्यों को प्रस्तुत करता है।
8. इस विधि में गृह कार्य की कोई समस्या नहीं रहती, क्योंकि छात्रों को पूरा काम विद्यालय में ही पूरा हो जाता है। यह किसी छात्र को ज्ञानवृद्धि अथवा समस्या के निराकरण के लिए विशेष अध्ययन की आवश्यकता होती है तो वह अपनी इच्छा से अध्ययन करता है।

आविष्कारात्मक विधि के दोष (Demerits of experimental Method)–

1. यह विधि प्रचुर व्यसाध्य है और भारत जैसे महान देश में सामान्य रूप से व्यावहारिक नहीं है। उत्तम प्रयोगशाला और प्रतिभाशाली अध्यापक के बिना यह विधि एक कल्पनामात्र है।
2. इस विधि में सीमित छात्रों की कक्षा ही सफलतापूर्वक वैज्ञानिक अध्ययन कर सकती है। भारत में विद्यालयों में छात्रों की अधिक संख्या वाली कक्षाओं में इस विधि का सफल प्रयोग नहीं हो सकता।
3. किसी भी वैज्ञानिक समस्या का क्रमिक स्तर निष्पादन कठिन है। इसके लिए विशेष कौशल, अनुभव, प्रतिभा एवं साधनों की आवश्यकता होती है।
4. छोटी कक्षाओं में बच्चों को केवल सीमित ज्ञान ही उपलब्ध होता है। उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे स्वतंत्र रूप में प्रयोग करने की क्षमता और कुशलता से युक्त होंगे। यह प्रणाली उच्च कक्षाओं में ही प्रयोग की जा सकती है।
5. इस प्रणाली में प्रगति धीमी होती है, अतः पाठ्य विषय को निर्धारित समय में नहीं पढ़ाया जा सकता।
6. अनुसंधान विधि के लिए उसी के उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें होनी चाहिए। इस प्रकार की पाठ्य पुस्तकें सुलभ न होने पर अध्यापक को घोर परिश्रम करने की आवश्यकता होती है, जिसके लिए उसमें रुचि क्षमता एवं शक्ति की कमी होती है।
7. इस विधि की सफलता के लिए असाधारण प्रतिभा, संपन्न अध्यापकों एवं छात्रों की आवश्यकता पड़ती है। किसी भी कक्षा अथवा विद्यालय में ऐसे अध्यापक एवं छात्र सामूहिक रूप में नहीं पाए जाते।
8. इस विधि द्वारा वैज्ञानिक अध्ययन में समय अधिक लगता है और ज्ञान कम प्राप्त होता है, ज्ञान अधूरा रहता है और अनुसंधान एवं वैज्ञानिक खोज का चमत्कार केवल कहने भर को रह जाता है। इसमें व्यावहारिकता एवं वास्तविकता नहीं होती।

◆◆◆

सूक्ष्म शिक्षण कौशल
(Micro Teaching Skills)

10. सूक्ष्म-शिक्षण से आप क्या समझते हैं? इसके सैद्धांतिक आधार क्या हैं?
(What do you understand by micro-teaching? Explain its theoretical basis.)

अथवा

सूक्ष्म-शिक्षण क्या है? इसके कौशल को विस्तार से समझाइए।
(What do you mean by mirco-teaching? Explain its skill in details.)

अथवा

"सूक्ष्म-शिक्षण कौशल" पर टिप्पणी कीजिए।
(Write a note on the "Micro-teaching skill".)

अथवा

प्रश्न कौशल का विकास करने के लिये जीव विज्ञान के किसी एक सम्प्रत्यय पर सूक्ष्म पाठ योजना प्रेक्षण सूची सहित बनाइये।
(Develop a micro lesson plan along with observation schedule on any concept of your choice in life science for developing the skill of questioning.)

अथवा

सूक्ष्म-शिक्षण क्या है? सूक्ष्म-शिक्षण के प्रश्न पूछना, व्याख्या करना, उदाहरण देना, कौशलों की चर्चा कीजिए।
(What is micro-teaching? Discuss micro-teaching skills of questioning, explanation and illustration with examples.)

अथवा

"शिक्षण कौशल" शब्द से आपका क्या अभिप्राय है? व्याख्या कौशल के घटकों का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by team teaching skills? Discuss the components of skill of explaining.)

उत्तर–शिक्षण एक कला है, जिसके द्वारा कुशल तथा कौशलपूर्ण अध्यापकों को तैयार किया जाता है। विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं समितियों ने समय-समय पर शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम के अनेक दोषों को अंकित किया है और सुझाव भी प्रस्तुत किए हैं। अनेक शिक्षा आयोगों एवं समितियों ने शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनेक दोष निकाले हैं तथा कमियों को दूर करने के लिए अनेक सुझाव भी दिए हैं। लेकिन कोई सुधार दिखाई नहीं दिए। शिक्षण-प्रशिक्षण की कमियों को दूर करने के लिए शिक्षकों को उत्तम प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए सूक्ष्म-शिक्षण, कक्षा-अन्तः प्रक्रिया, अनुकरणीय शिक्षण तथा अभिक्रमित अध्ययन का विकास हुआ। सूक्ष्म-शिक्षण की खोज मुख्य रूप से भारत की देन है।

सूक्ष्म-शिक्षण की अभी तक कोई भी एक सर्वसम्मत परिभाषा दिया जाना सम्भव नहीं है।

(1) **एलिन** के अनुसार सूक्ष्म-शिक्षण को किसी कक्षा के आकार और समय में सूक्ष्म पदीय शिक्षण परिस्थिति माना है।

(2) **प्रो. नरेन्द्र वैद्या** के अनुसार सूक्ष्म-शिक्षण वह सूक्ष्म पदीय शिक्षण स्थितियाँ हैं जहां वास्तविक कक्षा शिक्षण में कठिन स्थितियाँ कम हो जाती हैं। इससे शिक्षण अभ्यास की तुलना में पृष्ठपोषण बढ़ जाता है।

(3) **मैकनाइट** के अनुसार, सूक्ष्म-शिक्षण वे सूक्ष्मपदीय परिस्थितियाँ हैं जिनके द्वारा पुराने कौशलों (Skills) का सुधार तथा नये कौशलों का विकास किया जाता है। एलिन तथा रायन ने सूक्ष्म-शिक्षण के निम्नलिखित पांच आधारों का वर्णन किया है–

(क) सूक्ष्म-शिक्षण को वास्तविक शिक्षण माना गया है।
(ख) सूक्ष्म-शिक्षण से कक्षा शिक्षण की जटिलता कम होती है।
(ग) इसका मुख्य उद्देश्य विशिष्ट कार्य को पूर्ण करने का प्रशिक्षण देना है।
(घ) इस प्रकार की शिक्षण क्रिया में पृष्ठपोषण का अधिकाधिक प्रयोग होता है।
(ङ) सूक्ष्म-शिक्षण प्रक्रिया के मुख्य तीन स्तर हैं–ज्ञान प्राप्ति, कौशल प्राप्ति एवं स्थानान्तरण स्तर।

सूक्ष्म-शिक्षण का सैद्धान्तिक आधार–शिक्षण प्रक्रिया में अनेक प्रकार के शिक्षण कौशलों का योग होता है। यह एक जटिल प्रक्रिया है। सूक्ष्म-शिक्षण की यह धारणा है कि सूक्ष्म-शिक्षण की जटिल प्रक्रिया को सरलतम प्रक्रियाओं में बाँटा जा सकता है। इन सरलतम प्रक्रियाओं की सहायता से वांछित कौशलों (Desired skills) को अधिकाधिक रूप से विकसित किया जा सकता है। विकसित कौशल को एक-एक करके अन्त में एक साथ जोड़ा जा सकता है और इससे पूर्व निर्धारित अर्थपूर्ण शिक्षण उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है।

सूक्ष्म-शिक्षण का स्वरूप–यह एक ऐसी सूक्ष्मपदीय शिक्षण विधि है जिसके द्वारा शिक्षक 5-10 छात्रों के समूह को एक छोटे 5-10 मिनट के कालांश में पढ़ाता है। इस प्रकार का शिक्षण एक अनुपयोगी तथा बिना अनुभव के शिक्षण को नये शिक्षण कौशल के विकास तथा सुधार में सहायता प्रदान करता है। इस विधि द्वारा परीक्षार्थी को पाठ की समाप्ति पर उस कार्य की प्रगति के बारे में विकास हो जाता है। यह एक बहुत प्रभावशाली विधि है।

यह एक ऐसी प्रयोगात्मक विधि है जिसमें शिक्षण की रूढ़िवादी जटिलताओं को सरल बना दिया जाता है। सूक्ष्म-शिक्षण के निम्नलिखित चरण हैं–

(1) छात्राध्यापक के शिक्षण कौशल ज्ञान को जैसे वर्णन करना, प्रदर्शित करना, या प्रश्न पूछना आदि में से किसी को भी, विकसित करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है तथा उस पर आधारित पाठ का विकास कर दिया जाता है।

(2) छात्राध्यापक अपने सहयोगी छात्रों को एक छोटे से पाठ को केवल 5-10 मिनट तक ही पढ़ाता है। यह सूक्ष्म-शिक्षण का शिक्षण चरण कहलाता है।

(3) छात्राध्यापक द्वारा पढ़ाये गए पाठ को पर्यवेक्षक या पर्यवेक्षकों के एक समूह के द्वारा मूल्यांकन प्रोफार्मा के द्वारा पर्यवेक्षित किया जाता है। या सम्पूर्ण पाठ को आडियो टेप पर मूल्यांकन के लिए रिकार्ड कर लिया जाता है।

(4) शिक्षण के बाद पर्यवेक्षक छात्राध्यापकों के साथ पाठ पर विचार-विमर्श करता है। इस प्रकार पर्यवेक्षक छात्राध्यापकों को तुरन्त पृष्ठपोषण दे देता है। इस चरण को **'पृष्ठपोषण चरण'** कहते हैं।

(5) पर्यवेक्षक विचार-विमर्श के बाद छात्राध्यापकों को कुछ सुझाव देता है। जिसके आधार पर पाठ को पुनर्योजित किया जाता है। शिक्षण के इस चरण को **'पुनर्योजना चरण'** कहा जाता है।

(6) पुनर्योजित पाठ का छात्रों के दूसरे समूह को पुनर्शिक्षण किया जाता है। इस चरण को पुनर्शिक्षण चरण कहते हैं। इसका पुनः पर्यवेक्षण किया जाता है। फिर से पुनर्वेक्षण के आधार पर पृष्ठपोषण प्रदान किया जाता है तथा छात्राध्यापक विचार-विमर्श के बाद पाठ को फिर से नियोजित करता है।

(7) इस पुनः नियोजित पाठ को छात्राध्यापक समान स्तर के नये छात्रों के समूह को फिर से पढ़ाता है।

सूक्ष्म-शिक्षण के चरण एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार उपरोक्त चरण सूक्ष्म-शिक्षण के एक पूर्ण चक्र को प्रदर्शित करते हैं।

सूक्ष्म-शिक्षण में मुख्य रूप से पृष्ठपोषण के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं–

(1) वीडियो टेप (Video tape)
(2) आडियो टेप (Audio tape)
(3) पर्यवेक्षक (Supervisor)
(4) सहपाठी (Colleagues)
(5) छात्राध्यापक (जो सूक्ष्म-शिक्षण देते हैं)
(6) प्रथम पांच का कोई भी संगठन।

सूक्ष्म शिक्षण के चरणों को समयानुसार निम्न प्रकार से विभक्त किया जा सकता है–

चरण	समय
शिक्षण	5 मिनट
पृष्ठपोषण	5 मिनट
पुनर्योजन	10 मिनट
पुनर्शिक्षण	5 मिनट
पुनर्पृष्ठपोषण	5 मिनट
सूक्ष्म-शिक्षण	30 मिनट

किलिपट एवं उसके सहयोगियों के अनुसार सूक्ष्म-शिक्षण एक शिक्षक प्रशिक्षण विधि है। इस विधि में शिक्षण विधि को सरल और नियंत्रित बनाया गया है। इस विधि में विशेष प्रकार के शिक्षण कौशल का अभ्यास सीमित छात्रों के लिए सीमित होता है। पुनर्पाठयोजना तथा पुनर्शिक्षण छात्राध्यापक द्वारा प्राप्त प्रतिपुष्टि पर आधारित होती है। किलिपट एवं सहयोगियों ने इस विधि को तीन चरणों में बांट दिया, जो निम्न प्रकार से हैं–

प्रथम चरण-1
ज्ञान प्राप्त करना

द्वितीय चरण-2
कौशल प्राप्त करना

तृतीय चरण-3
अर्जित कौशल को कक्षा में देना

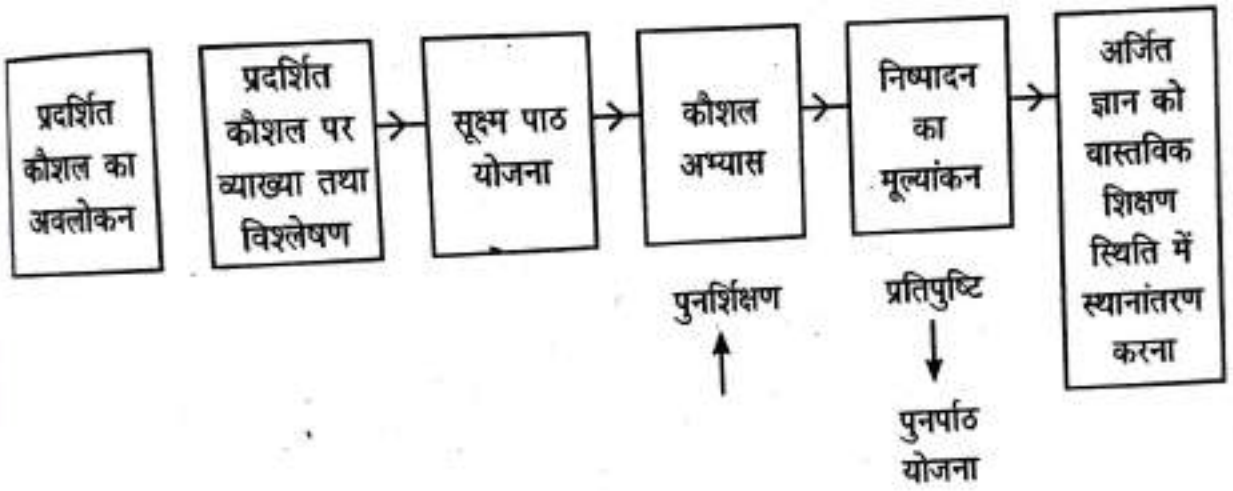

सूक्ष्म-शिक्षण के इस चक्र को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है–

(1) **सूक्ष्म-शिक्षण**–सूक्ष्म पाठ योजना–शिक्षण–प्रतिपुष्टि–पुनर्पाठयोजना

द्वितीय प्रतिपुष्टि ← पुनर्अध्यापन

यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक छात्राध्यापक कौशल प्राप्त नहीं कर लेता।

सूक्ष्म-शिक्षण विधि को इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है।

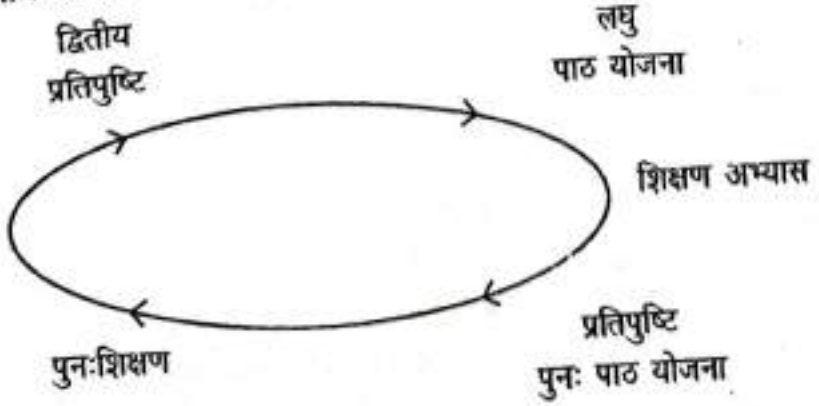

ऐलन और रेयन ने अपनी पुस्तक सूक्ष्म-शिक्षण में लिखा है–

(i) सूक्ष्म-शिक्षण एक वास्तविक शिक्षण है। इसमें शिक्षण स्थिति की रचना इस प्रकार से की जाती है कि अध्यापक और छात्र एक साथ अभ्यास करते हैं।

(ii) सूक्ष्म-शिक्षण द्वारा शिक्षण की कठिनाइयों को कम किया जाता है। अभ्यास के द्वारा छात्रों में कौशल भी उत्पन्न किया जाता है।

छात्राध्यापक को अनेक आदर्श उपलब्ध कराये जाते हैं तथा अधिगम वातावरण को ऐसा बनाया जाता है, जिसमें सकारात्मक मूल्यांकन हो तथा सारी प्रक्रिया में लचीलापन हो।

◆◆◆

11. सूक्ष्म-शिक्षण के माध्यम से उत्पन्न शिक्षण कौशल व उनके घटकों का वर्णन करो।
(Describe the teaching skills developed through micro-teaching and their components.)

अथवा

"दृष्टान्त व्याख्या के कौशल" पर टिप्पणी करें?
(Write a note on the "skill of illustrated with examples".)

उत्तर–सूक्ष्म-शिक्षण की प्रक्रिया इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया को अनेक कौशलों में विभक्त किया जा सकता है। इन कौशलों को हम परिभाषित कर सकते हैं,और व्यवस्थित कर सकते हैं। सूक्ष्म-शिक्षण से उत्पन्न शिक्षण कौशल निम्न प्रकार से हैं–

(क) पाठ प्रस्तावना कौशल–छात्रों की अपेक्षा अध्यापकों के पास अधिक ज्ञान होता है परन्तु वे अपने ज्ञान को छात्रों तक सफलतापूर्वक नहीं पहुंचा सकते। इस कारण वे पाठ्य-वस्तु को छात्रों के मानसिक स्तर के अनुरूप नहीं बना पाते हैं। पाठ प्रस्तावना कौशल का सम्बन्ध छात्रों के पूर्व ज्ञान से है। इसके प्रमुख घटक हैं–

(1) प्रश्नों का छात्रों के पूर्वज्ञान से सम्बन्ध।
(2) प्रश्नों का मूल पाठ तथा उनके उद्देश्यों से।
(3) प्रश्नों को शृंखलाबद्ध करना।
(4) छात्रों के मानसिक स्तर के अनुसार पाठ उद्देश्य, उपयुक्त उपकरणों एवं साधनों के अनुसार चयन करना।
(5) अवधि विस्तार
(6) छात्रों की रुचि व आकर्षण।
(7) छात्रों को प्रेरित करने की क्षमता।
(8) अध्यापक का उत्साह तथा सजगता।

(ख) अनुशीलन कौशल–प्रश्न पूछना सबसे अधिक प्रचलित साधन है। प्रश्न पूछने से छात्रों की चिन्तन शक्ति बढ़ती है। जो प्रश्न छात्रों की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए बाध्य करते हैं उन्हें अनुशीलन प्रश्न (Probing Question) कहते हैं अध्यापक इन प्रश्नों का प्रयोग ऐसी स्थिति में करते हैं, जिसके आधार पर कौशल को निम्न घटकों में बाँटा जा सकता है–

(1) **संकेत देना**–शिक्षक शुरू में ऐसे प्रश्न पूछता है जिनका उत्तर छात्र जानते होते हैं। इसके बाद ऐसे प्रश्न पूछता है, जिससे छात्र सही उत्तर तक पहुंच सकें। इन्हें संकेतात्मक प्रश्न कहा जाता है। अतः संकेतात्मक प्रश्न शृंखला एक के बाद एक पूछे जाने वाले प्रश्नों की शृंखला है।

(2) **विस्तृत सूचना प्राप्त करना**–इस प्रकार के प्रश्न जब पूछे जाते हैं, जब छात्र अधूरा उत्तर देते हैं। इनका उद्देश्य छात्रों से और अधिक जानकारी प्राप्त करना है।

(3) **पुनः केन्द्रीयकरण**–इस प्रकार के प्रश्न छात्रों द्वारा सही उत्तर दिए जाने के बाद पूछे जाते हैं। वर्तमान ज्ञान के सहारे छात्रों के ज्ञान को वर्तमान परिस्थितियों में बार-बार केन्द्रित करने की कोशिश की जाती है।

(4) **पुनः पोषण**–अध्यापक को एक ही प्रश्न को कई बार पूछना चाहिए। इसका मुख्य उद्देश्य छात्र को कक्षा में अधिक से अधिक सक्रिय करना है ताकि वे पाठ के विकास में सहयोग दें।

(5) **आलोचनात्मक सजगता**–इस विधि में 'क्यों' व 'कैसे' वाले प्रश्न पूछे जाते हैं। छात्रों के उत्तर को सार्थक बनाने के लिए ऐसे प्रश्नों का उपयोग किया जाता है।

(ग) **उद्दीपन परिवर्तन कौशल**–इस कौशल का प्रयोग अध्यापक छात्रों के ध्यान को आकर्षित करने के लिए किया जाता है। छात्रों का ध्यान आकर्षित करने के लिए शिक्षक अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। उसे उद्दीपन परिवर्तन कहते हैं। उद्दीपन परिवर्तन के लिए निम्न प्रकार के व्यवहार परिवर्तन किए जाते हैं–

(1) शरीर संचालन (Movement)

(2) भाव केन्द्रीयकरण
   (i) शाब्दिक केन्द्रीयकरण का प्रयोग
   (ii) मुद्रात्मक प्रयोग
   (iii) शब्दों का मुद्रात्मक प्रयोग।

(3) भावमुद्रा, मुखमुद्रा, नयन संकेत, सिर हिलाना, हस्त संकेत आदि उद्दीपन परिवर्तन कौशल उत्पन्न किया जा सकता है।

(4) स्वर में आरोह अवरोह (Change in speech pattern)

(5) छात्र शिक्षक की परस्पर क्रिया में परिवर्तन
   (i) शिक्षक-छात्र परस्पर क्रिया
   (ii) छात्र-छात्र परस्पर क्रिया
   (iii) शिक्षक कक्षा परस्पर क्रिया

(6) दृश्य श्रव्य क्रम परिवर्तन
   (i) दृश्य से श्रव्य की ओर
   (ii) श्रव्य से दृश्य की ओर
   (iii) दृश्य व श्रव्य का साथ-साथ प्रयोग।

(7) विराम प्रयोग (Pause)।

(घ) **पुनर्बलन कौशल (Skill of Reinforcement)**–पुनर्बलन कौशल से हमारा अभिप्राय ऐसे उद्दीपनों से है, जिनके प्रस्तुतीकरण से या हटाने के पश्चात् किसी अनुक्रिया के होने की सम्भावना अधिक हो जाती है। जिस वस्तु के सहारे पुनर्बलन दिया जाता है उसे पुनर्बलन कहते हैं। इस कौशल का प्रयोग छात्रों की पाठ में रुचि उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। इसके निम्नलिखित घटक हैं–

(1) **शाब्दिक पुनर्बलन**–इसके दो घटक हैं–
   (i) **स्वीकारात्मक वचन**–छात्रों द्वारा भाव तथा विचारों की सहमति प्रकट करने के लिए पुनर्बलन के रूप में इन शब्दों का और वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। तुम जो कहना चाहते हो, मैं समझ गया, छात्रों के उत्तर को परिष्कृत भाषा में दुहराना, यह मजेदार बात है, तुम्हारे विचारों से मैं सहमत हूं इत्यादि।
   (ii) **प्रशंसात्मक शब्दों का प्रयोग**–जैसे बहुत अच्छा, ठीक, बहुत ठीक, सही, उत्तम, बहुत अच्छा, हाँ, सही, सुन्दर आदि।

(2) **अशाब्दिक धनात्मक पुनर्बलन का प्रयोग**–शिक्षक छात्रों को शब्दों का प्रयोग किए बिना पुनर्बलन दे सकता है। जैसे–सिर हिलाना, मुस्कराना, प्रशंसा के भाव द्वारा छात्र को देखना, छात्र की बात को ध्यान से सुनना, छात्रों द्वारा प्राप्त उत्तर को श्यामपट्ट पर लिखना, पीठ थपथपाना, सही उत्तर के लिए छात्रों से ताली बजवाना।

(3) ऋणात्मक शाब्दिक व अशाब्दिक पुनर्बलनों के प्रयोग का अभाव।

(4) पुनर्बलनों का सही प्रयोग–सरल प्रश्नों के उत्तर पर हल्के शब्दों का प्रयोग, कठिन प्रश्नों पर अद्भुत चमत्कारिक शब्दों का प्रयोग, सही शब्दों का प्रयोग करना आदि।

(5) पुनर्बलन का समुचित प्रयोग करना।

(ङ) व्याख्या कौशल (Skill of Explanation)–इस कौशल का प्रयोग अक्सर किसी एक घटना, क्रिया, परिणाम, कार्यविधि, स्थिति को स्पष्ट करने के लिए होता है। व्याख्या करते समय किसी तथ्य में सन्निहित पद क्रमों अर्थात् उससे सम्बन्धित क्या, क्यों या कैसे आदि शब्दों को स्पष्ट करने की चेष्टा की जाती है। इस कौशल के लिए अध्यापक अनेक विधियों का प्रयोग करता है। जैसे परिभाषा देना, अभिनय करना, भाषान्तर करना, सरल भाषा में विश्लेषण करना। पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग, मूर्त सामग्रियों का प्रयोग करना आदि शामिल है।

इस कौशल के मुख्य घटक हैं–

(1) भाषा में धारा प्रवाह

(2) कथनों में तारतम्य

(3) असम्बद्ध कथनों का अभाव

(4) स्पष्ट प्रारम्भिक कथन का प्रयोग

(5) कथनों को परस्पर जोड़ने वाले शब्दों का प्रयोग

(6) निष्कर्षात्मक वक्तव्य का प्रयोग

(7) छात्रों के परीक्षण के लिए बीच-बीच में प्रश्न पूछना

(8) मुहावरों का प्रयोग।

(च) दृष्टान्त व्याख्या का कौशल (Skill of Illustrating with Examples)–अध्यापक अपने पाठ को सरल व रुचिकर बनाने के लिए चित्रों, मॉडल आदि की सहायता लेता है। इन दृष्टान्तों की सहायता से अध्यापक अज्ञात, कठिन व अमूर्त पाठ्य-वस्तु से सम्बन्धित ज्ञान को अच्छी तरह समझा देता है। इसे दृष्टान्त कौशल कहते हैं। इस कौशल के घटक निम्न प्रकार से हैं–

(1) विशेष उदाहरणों का चयन एवं निर्माण।

(2) दृष्टान्तों से सम्बन्धित उदाहरणों का चयन एवं निर्माण।

(3) रुचिकर उदाहरणों का चयन।

(4) छात्रों से भी समान उदाहरणों की मांग।

(5) शिक्षण के समय बीच-बीच में प्रश्न पूछना।

(6) आगमन-निगमन उपागम विधि का उपयोग।

उपरोक्त बिन्दुओं की सहायता से छात्रों में दृष्टान्त कौशल उत्पन्न किया जा सकता है।

(छ) श्यामपट्ट प्रयोग कौशल (Blackboard Using Skill)–इस कौशल के मुख्य घटक हैं–

(1) श्यामपट्ट के अक्षर अलग-अलग और स्पष्ट होने चाहिए।

(2) प्रत्येक अक्षर के बीच समुचित स्थान हो।

(3) अक्षरों का स्थान व आकार उचित होना चाहिए।

(4) अक्षरों की मोटाई समान हो। शब्द या वाक्य एक सीधी रेखा में लिखें।

(5) पंक्तियों के बीच में उचित तथा समान अन्तर होना चाहिए।

(6) अनावश्यक अक्षरों या वाक्यों को मिटा देना चाहिए।

(7) मुख्य बातों को रेखांकित करें जिससे छात्रों का ध्यान केन्द्रित हो।

(8) रेखाचित्र बनायें।

(9) ध्यान केन्द्रित करने के लिए रंगीन चॉक का प्रयोग करें।

(10) मुख्य बातों को स्पष्ट रूप से लिखना चाहिए।

(11) पाठ्य-वस्तु से सम्बन्धित बातों को क्रम व तारतम्यता में लिखना चाहिए।

(ज) **पाठ समापन कौशल (Lesson Closure Skill)**–इसके घटक निम्नलिखित हैं–

(1) इस कार्य को शिक्षक पुनरावृत्ति के द्वारा छात्रों की सहायता से करता है। मुख्य बातों को सुसम्बद्ध करना।

(2) नये ज्ञान के प्रयोग का समय प्रदान करें।

(3) अर्जित ज्ञान को भविष्य के अधिगम से जोड़ना तथा पूर्व ज्ञान को नये ज्ञान से जोड़ना।

पाठ समापन कौशल उत्पन्न करने के लिए उपरोक्त बातों का ध्यान रखें।

पाठ समापन के पश्चात् गृहकार्य देना चाहिए। गृह कार्य विभिन्न रूप से दिया जा सकता है–

(1) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के रूप में।

(2) समस्या के रूप में।

(3) प्रयोग करने के रूप में।

(4) चित्र, रेखाचित्र, मॉडल चार्ट आदि बनाने के लिए।

(5) निबन्धात्मक प्रश्नों के रूप में।

(6) बहुविकल्पीय प्रश्नों के रूप में।

व्याख्यान विधि का अर्थ (Meaning of Lecture Method)–व्याख्यान वस्तुतः ज्ञान, तथ्य, सिद्धांत आदि की व्याख्या है जो शिक्षक छात्रों को देना चाहता है। जिस समय शिक्षक ज्ञान आदि देना चाहता है तो उसका अनुमान होता है कि छात्र के पास आवश्यक पृष्ठभूमि एवं योग्यता है, जिससे वह व्याख्यान को समझ सकेगा।

व्याख्यान आवश्यक संबंध स्थापित करने का एक संक्षिप्त एवं प्रभावी साधन है। व्याख्यान का मुख्य आधार मानव सूचना प्रविधि है।

अभिप्राय–सम्प्रेषण सूचना ग्रहण करना इस विधि में अध्यापक बोलता है, और छात्र निष्क्रिय श्रोता बने रहते हैं और सक्रिय भाग नहीं लेते। विद्यार्थियों का बनी बनाई सामग्री से पोषण किया जाता है और उनकी निरीक्षण तथा तार्किक शक्ति को उत्तेजित नहीं किया जाता, जिसका अभ्यास सीखने की प्रक्रिया में बहुत आवश्यक है। इस विधि को अध्यापक केन्द्रित (Teacher Centred) विधि कहते हैं।

व्याख्यान विधि की तैयारी (Preparation of Lecture Method)–व्याख्यान विधि के प्रयोग के लिए उपयुक्त नियोजन तथा प्रभावी निष्पादन आवश्यक है, जिसमें अधिगम हो सके। व्याख्यान विधि के आयोजन एवं निष्पादन के लिए कुछ सुझाव निम्न हैं–

1. व्याख्यान समाप्ति के पश्चात् कुछ प्रश्न पूछे जाएं जिससे छात्रों का सम्प्रत्यय स्पष्ट हो सके।
2. व्याख्यान के प्रश्नों में उचित विराम चिह्नों का प्रयोग किया जाए।
3. व्याख्यान ऐसा हो जो छात्रों के पूर्व ज्ञान एवं नवीन ज्ञान में सह-संबंध स्थापित कर सके।
4. व्याख्यान में प्रयुक्त उदाहरणों का समावेश हो जिससे छात्र अभिप्रेरित हों।
5. व्याख्यान सरल भाषा में हो जिससे छात्र सरलता से समझ सकें।
6. व्याख्यान की तैयारी से पूर्व शिक्षक को छात्रों का पूर्व ज्ञान जानना आवश्यक है, जिससे पूर्व ज्ञान एवं नवीन ज्ञान में सरलता से संबंध स्थापित किया जा सके।
7. व्याख्यान सुनियोजित होना चाहिए। व्याख्यान को आवश्यक भागों में विभाजित किया जाए तथा मुख्य बिन्दुओं को प्रमुखता से उभारा जाए।

इस विधि को निम्न प्रकार से विस्तृत किया जा सकता है–

1. प्रकारण का उद्देश्य क्या है? मैं इस व्याख्यान का नियोजन क्यों कर रहा हूँ?
2. प्रकरण की प्रस्तावना, जिससे छात्रों के पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ा जाए और आवश्यकतानुसार उदाहरण अथवा प्रदर्शन द्वारा छात्रों को अधिगम के लिए उत्प्रेरित किया जाए।
3. विषय-वस्तु का संगठन
   (i) मुख्य बिन्दू
   (ii) बिन्दुओं को विकसित करना
   (iii) समूह की आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलशीलता
4. प्रस्तुतीकरण
   (i) सीधे, स्पष्ट, भाषा में प्रस्तुत करना
   (ii) प्रभावी वाणी में प्रस्तुत करना
   (iii) संकेत का प्रयोग (Use of Gestures)
   (iv) श्यामपट्ट का प्रयोग
   (v) प्रश्नों का प्रयोग
5. सारांश द्वारा निष्कर्ष निकालना।

व्याख्यान कौशल के अभ्यास हेतु एक आदर्श सूक्ष्म-शिक्षण पाठ योजना

छात्राध्यापक का नाम : ..... दिनांक : .....

कक्षा : दसवीं अवधि : 6 मिनट

विषय : जीव विज्ञान उपविषय : श्वसन तंत्र

	अध्यापक क्रिया	विद्यार्थी क्रिया
1.	मनुष्य को जिन्दा रहने हेतु किस-किस चीजों की जरूरत होती है?	उत्तर–पानी, हवा व भोजन आदि।
2.	हम साँस कहाँ से लेते हैं?	उत्तर–नाक व मुँह से।
3.	श्वास नली कितने भागों में विभक्त है?	उत्तर–दो।
4.	मनुष्य में फेफड़ों की संख्या कितनी होती है?	उत्तर–दो।
5.	दाएँ एवं बाएँ फेफड़ों में क्या अंतर है?	उत्तर–दायाँ फेफड़ा बाएँ फेफड़े से बड़ा होता है।
6.	फेफड़ों को सुरक्षा किससे प्राप्त होती है?	उत्तर–पसलियों से।

◆◆◆

उदाहरण कौशल
(Skill of Illustration)

14. "उदाहरण प्रविधि" पर टिप्पणी कीजिए।
(Write a note on the "illustration technique".)

उत्तर–उदाहरण प्रविधि में उदाहरणों का प्रयोग छात्रों की विचार शक्ति तथा कल्पना को जाग्रत करके, मानसिक विकास में वृद्धि हेतु किया जाता है। उदाहरण वास्तव में वह सामग्री है, जो पाठ्य-वस्तु को रोचक, बोधगम्य तथा स्पष्ट करने में सहायक होती है। शिक्षक खोज-खोज कर वांछित उदाहरण तथा दृष्टांत छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करके विषय-सामग्री को सरल बनाने का प्रयास करते हैं।

उदाहरणों के प्रयोग से अमूर्त (Abstract), कठिन तथा जटिल विषयों को मूर्त (Concrete), सुगम तथा आसान बनाया जाता है, जिससे छात्रों के मस्तिष्क पर ज्ञान की अभीष्ट छाप पड़ जाती है।

अच्छे और उत्तम कोटि के उदाहरण दुरूह कथनों को सजीव, सरल तथा गाह्य बनाकर विषय की क्लिष्टता को कम करने का प्रयास करते हैं।

शिक्षण में सटीक उदाहरण तथा दृष्टांत देना एक कला है, जिसमें शिक्षक को पारंगत होना आवश्यक है। उदाहरणों एवं दृष्टांतों का प्रयोग विषय-सामग्री को अधिक स्पष्ट करता है और छात्रों का नया ज्ञान प्रदान करने में सहायक होता है। इस प्रविधि के प्रयोग से छात्रों की जिज्ञासा का समाधान होता है, वे विषय के सार तक सरलता से पहुँच जाते हैं और ज्ञान के प्रति रुचि में वृद्धि होती है।

शिक्षक जब इस प्रविधि का प्रयोग विभिन्न प्रकार के सटीक उदाहरण व सामग्री को उदाहरणों तथा दृष्टांतों के माध्यम से सरलता से समझ जाते हैं और वे स्वयं भी नये-नये उदाहरण तथा दृष्टांत देने की कला में दक्ष होने लगते हैं।

उदाहरण के प्रकार (Kinds of Illustration)–उदाहरण सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं–

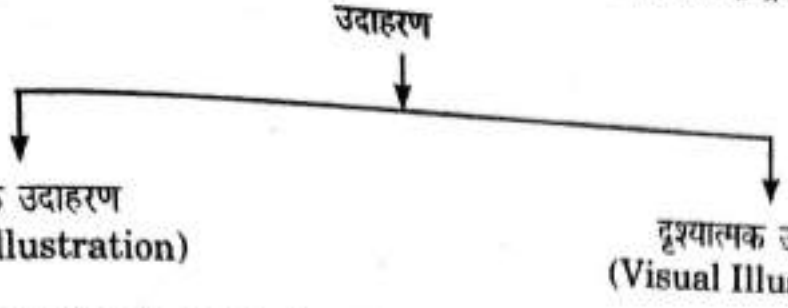

शाब्दिक उदाहरण (Verbal Illustration)–शाब्दिक या शब्दों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले उदाहरणों को शाब्दिक या मौखिक उदाहरण भी कहा जाता है।

शाब्दिक उदाहरणों में सुनने और समझने की क्रियाएँ होती हैं, जो छात्रों को सुनने तथा समझने में उचित प्रशिक्षण प्रदान करती है। उदाहरणों का प्रयोग करके शिक्षक पाठ्य सामग्री संकल्पनाओं, अमूर्त भावों तथा मुश्किल तथ्यों को समझने के लिए ऐसे शाब्दिक चित्र प्रस्तुत करता है, जिससे छात्र सरलता से पाठ्य सामग्री समझने में समर्थ हो जाते हैं।

शाब्दिक उदाहरणों के अंतर्गत मौखिक उदाहरण, दृष्टांत, कहानियाँ, लोकोक्ति, नीति श्लोक, उपमाएँ, रूपक तथा उत्प्रेक्षाओं आदि को समावेशित किया जाता है।

शाब्दिक उदाहरणों में भाषा का प्रयोग आवश्यक है। अतः अच्छे शिक्षकों का भाषा पर सदैव अच्छा अधिकार रहता है, तभी वे शाब्दिक उदाहरणों का खुलकर प्रयोग कर उत्तम शिक्षण की व्यवस्था कर सकते हैं।

शाब्दिक उदाहरणों का प्रयोग (Use of Verbal Illustrations)–शाब्दिक उदाहरणों का प्रयोग करते समय शिक्षकों को निम्न बातों पर गौर करना चाहिए–

1. शिक्षक को पाठ-योजना तैयार करते समय ही यह विचार कर लेना चाहिए कि पाठ प्रस्तुतीकरण में कब, कहां और किस स्थल पर कौन-कौन से उदाहरणों का प्रयोग करना है। इस प्रकार की योजना बनाने से शिक्षक को कक्षा शिक्षण में कठिनाई नहीं आएगी और वह सरलता से सटीक उदाहरणों का प्रयोग कर सकेगा।
2. उदाहरण सरल शुद्ध, स्पष्ट तथा सुगम भाषा में होने चाहिए।
3. उदाहरण कक्षा के स्तर के अनुकूल होने चाहिए अन्यथा उदाहरण दुरूहता फैला देंगे और विषय-सामग्री उन्हें स्पष्ट नहीं हो सकेगी।
4. उदाहरण प्रस्तुत करते समय लोकोक्तियों या जनश्रुतियों की भाषा में यथासंभव कोई भी बदलाव नहीं करना चाहिए।
5. असत्य, अवास्तविक तथा व्यक्तिगत आक्षेप वाले उदाहरणों के प्रयोग से शिक्षकों को बचना चाहिए।
6. उदाहरण के प्रयोग शुष्क एवं नीरस शिक्षण को रोचक एवं सजीव बनाने के लिए करना चाहिए।
7. उदाहरण ऐसे हों, जिन्हें छात्र सरलतापूर्वक समझ सकें।
8. आवश्यकतानुसार ही उदाहरणों का प्रयोग किया जाना चाहिए। बहुत ज्यादा उदाहरणों से भी छात्र ऊबने लगते हैं।
9. उदाहरण प्रस्तुत करते समय शिक्षक को उचित मुद्रा में, उचित स्वर से तथा उचित गति से उदाहरण देने चाहिए।
10. उदाहरणों में विविधता होनी चाहिए। एक ही प्रकार के उदाहरण छात्रों की रुचि पाठ में कम करते हैं।
11. अच्छे परिणामों के लिए कठिन अंशों तथा अमूर्त विचारों के रखने के तुरंत बाद ही उदाहरणों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

12. उदाहरणों का संबंध मूल पाठ से अवश्य होना चाहिए, अन्यथा छात्र उदाहरणों की दुनिया में रहकर मूल पाठ से हाथ धो बैठेंगे।
13. उदाहरण के प्रयोग के समय शिक्षकों को शिक्षण सूत्रों के अनुसार उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए, जैसे ज्ञात से अज्ञात की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर आदि।
14. उदाहरण ऐसे प्रस्तुत किए जाएँ जो छात्रों के घरेलू/विद्यालयी वातावरण से संबंधित हों।
15. बड़ी कक्षाओं की तुलना में छोटी कक्षा के छात्रों के लिए उदाहरण प्रविधि ज्यादा उपयोगी है, क्योंकि छोटे बच्चों का अनुभव व ज्ञान कम होता है। वे पाठ को उदाहरणों के माध्यम से सहज में ही समझ लेते हैं।

दृश्यात्मक उदाहरण (Visual Illustration)–दृश्यात्मक उदाहरणों को प्रदर्शनात्मक उदाहरण अथवा वस्तुत रूप उदाहरण (Objective Illustration) भी कहा जाता है। इन उदाहरणों में देखने और समझने की क्रियाएँ समावेशित हैं। अतः इस प्रकार के उदाहरणों का प्रयोग छात्रों को देखने तथा समझने के क्षेत्र में भी उचित प्रशिक्षण प्राप्त होता है। दृश्यात्मक उदाहरणों के प्रयोग से छात्रों की ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ क्रियाशील हो जाती हैं, जिससे शिक्षक अधिक सजीव और सरल हो जाता है। ये उदाहरण छात्रों को पाठ्य-वस्तु स्पष्ट करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। कमजोर तथा मंद बुद्धि वाले छात्रों को दृश्यात्मक उदाहरणों के प्रयोग से पाठ जल्दी और सही ढंग से स्पष्ट होने लगता है।

दृश्यात्मक उदाहरणों के अंतर्गत प्रतिरूप (Model), चार्ट (Chart), रेखाचित्र (Sketches), ग्राफ (Graph), मानचित्र (Map), चित्र (Pictures), ग्लोब आदि उपकरणों को सम्मिलित किया जाता है।

दृश्यात्मक उदाहरणों का प्रयोग (Use of Visual Illustration)–दृश्यात्मक उदाहरणों का प्रयोग करते समय निम्नांकित सावधानियाँ आवश्यक हैं–

1. पाठ योजना के निर्माण के समय ही शिक्षक को सोच लेना चाहिए कि वह पाठ के किन अंशों को स्पष्ट करने के लिए कब और कौन-कौन से दृश्यात्मक उदाहरणों का कैसे-कैसे उपयोग करेगा। योजना के अनुसार ही इनका प्रयोग करना चाहिए।
2. दृश्यात्मक उदाहरण का प्रयोग पाठ के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाना चाहिए।
3. दृश्यात्मक उदाहरण सरल, सजीव व आकर्षक तथा सटीक होने चाहिए।
4. दृश्यात्मक उदाहरणों (जैसे चार्ट या मॉडल आदि) का आकार कम से कम इतना बड़ा होना चाहिए, जिससे कि कक्षा में बैठा प्रत्येक छात्र आसानी से उन्हें देख सके।
5. दृश्यात्मक उदाहरणों का प्रयोग तभी किया जाना चाहिए जब उनका प्रयोग अनिवार्य तथा आवश्यक हो। बिना आवश्यकता के इनका प्रयोग नहीं किया जाए तो अच्छा है।
6. दृश्यात्मक उदाहरणों का प्रयोग करते समय कक्षा में उचित कक्षा-व्यवस्था बनानी चाहिए और दृश्यात्मक उदाहरणों को सही ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए।
7. दृश्यात्मक उदाहरणों को देखने, समझने तथा उनका निरीक्षण करने की पूरी-पूरी सुविधा तथा आवश्यक समय अवश्य दिया जाना चाहिए।
8. इन उदाहरणों के प्रयोग में आवश्यकता से अधिक समय नहीं लगाना चाहिए। जितनी देर आवश्यक है, उतनी ही देर इन्हें देखने के लिए दी जानी चाहिए। उद्देश्य की प्राप्ति के बाद इन्हें हटा देना चाहिए।
9. दृश्यात्मक उदाहरणों को बार-बार कक्षा में प्रस्तुत नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें अनावश्यक रूप से समय नष्ट होता है और कोई उद्देश्य पूरा नहीं होता।
10. दृश्यात्मक उदाहरणों में विविधता होनी चाहिए।
11. दृश्यात्मक तथा शाब्दिक उदाहरणों को हेर-फेर के साथ (एक के बाद एक) प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
12. शिक्षक को दृश्यात्मक उदाहरणों के मनोरंजनात्मक मूल्य की अपेक्षा उसके शैक्षिक मूल्य पर विशेष बल देना चाहिए।

◆◆◆

"मापन और मूल्यांकन के सम्प्रत्यय" पर टिप्पणी कीजिए।
(Write a note on the "Concept of measurement and evaluation.")

अथवा

मापन और मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं? एक अच्छे प्रश्न-पत्र की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
(What do you mean by measurement and evaluation? Explain the attributes of a good test.)

अथवा

"मापन व मूल्यांकन के अन्तर" पर टिप्पणी कीजिए।
(Write a short note on the "difference between measurement and evaluation.")

उत्तर–कुछ नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार वस्तुओं को मात्रात्मक रूप देने की प्रक्रिया को माप कहा जा सकता है। "मापन वह क्रिया है, जो विभिन्न निरीक्षणों, वस्तुओं अथवा घटनाओं को विशेष नियमों के अनुसार सार्थक तथा संगत रूप के संकेत चिह्न अथवा आंकिक संकेत प्रदान करने की क्रिया है।

मापन किसी वस्तु, प्रक्रिया, घटना अथवा गुण का मात्रात्मक विवेचन है, जबकि मूल्यांकन किसी सांस्कृतिक अथवा वैज्ञानिक संदर्भ में एक गुणात्मक विवेचन है। मूल्यांकन मापन की अपेक्षा एक विस्तृत प्रत्यय है। मापन मूल्यांकन एक दूसरे से भिन्न हैं। मापन किसी वस्तु का अंकात्मक रूप है जबकि मूल्यांकन मापन के साथ-साथ सभी को परिमाणात्मक रूप प्रदान करता है।

क्र.सं.	मूल्यांकन (Evaluation)	मापन (Measurement)
1.	मूल्यांकन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।	मापन का कोई निश्चित समय होता है।
2.	मूल्यांकन साक्ष्यों से निष्कर्ष निकालता है।	मापन का कार्य साक्ष्यों को इकट्ठा करना है।
3.	इसमें श्रम, धन और समय की अधिक आवश्यकता होती है। इसमें परीक्षाएं तथा विश्लेषण सम्मिलित होता है।	इसमें ज्ञान, धन तथा समय की आवश्यकता नहीं होती। इसमें परीक्षायें कम होती हैं।
4.	मूल्यांकन एक साध्य है।	यह एक साधन है।
5.	मूल्यांकन का आधार उद्देश्य होता है।	मापन का आधार पाठ्य-वस्तु है।
6.	मूल्यांकन के साथ मापन अनिवार्य है।	मापन के बिना मूल्यांकन का कार्य नहीं हो सकता।
7.	यह निश्चित धारणा बनाने में सहायता करता है। मूल्यांकन में सभी परीक्षाएं सम्मिलित होती हैं। इसके आधार पर हम किसी भी छात्र के बारे में निश्चित धारणा बना सकते हैं।	मापन के आधार पर निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती। मापन में कुछ परीक्षाएं सम्मिलित होती हैं। जिनके आधार पर हम निश्चित धारणा नहीं बना सकते।
8.	मूल्यांकन से सभी परीक्षाओं के अंक प्राप्त होते हैं जिनके योग से जो छात्र सभी विषयों में सबसे अधिक अंक प्राप्त करता है, उसे योग्य माना जाता है। क्योंकि सभी विषयों में, सभी पक्षों की परीक्षा देने के बाद ही उसका क्रम प्रथम आता है।	यदि कोई छात्र एक विषय में सबसे अधिक अंक प्राप्त करता है तो हम यह नहीं कह सकते कि वह सबसे योग्य छात्र है।

क्र.सं.	मूल्यांकन (Evaluation)	मापन (Measurement)
9.	मूल्यांकन में सम्पूर्ण व्यक्तित्व की परीक्षा होती है। जैसे किसी छात्र का मूल्यांकन करने के लिए उसकी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा अन्य पक्षों की परीक्षा भी ली जाएगी तभी उसका मूल्यांकन होगा।	मापन में जिन परीक्षाओं का उद्देश्य वर्तमान आवश्यकताओं से सम्बन्धित हो, केवल उनकी ही परीक्षा ली जाती है। जैसे व्यावसायिक रुचि की परीक्षा तथा गणित की परीक्षा।
10.	मूल्यांकन द्वारा यह निश्चित कर सकते हैं कि किसी योग्यता की संख्यात्मक एवं गुणात्मक मात्रा सही है या नहीं।	मापन द्वारा किसी योग्यता या गुण की यात्रा को निश्चित किया जाता है। मापन संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार से हो सकता है।
11.	मूल्यांकन में समस्त पक्षों का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भविष्यवाणी सार्थकता के साथ कर सकते हैं।	मापन में किसी योग्यता अथवा गुण की मात्रा को ज्ञात किया जाता है। मापन संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों हो सकती है।
12.	मूल्यांकन के लिए मापन अनिवार्य है, परन्तु मापन का शैक्षिक लाभ मूल्यांकन द्वारा ही किया जा सकता है।	मापन के बिना मूल्यांकन का कार्य वैज्ञानिक नहीं हो सकता।

राइस्टोन (Wrighstone) ने मापन और मूल्यांकन में अन्तर बताते हुए लिखा है कि मापन विषय-वस्तु के एक पहलू से सम्बन्धित है जबकि मूल्यांकन पूरे वातावरण की जानकारी देता है। मापन प्रत्येक का अंकीकरण करने को अपना लक्ष्य मानता है जबकि मूल्यांकन उन अंकों की व्याख्या करके उनमें सुधार करने हेतु आधार प्रदान करता है।

ब्रेडफील्ड एवं मारडाक के अनुसार–"मापन क्रिया में किसी घटना से सम्बन्धित परिणामों के लिए चिह्न निश्चित किए जाते हैं। जबकि मूल्यांकन में उस घटना या तथ्य का मूल्य ज्ञात किया जाता है।

मापन व मूल्यांकन में तुलनात्मक अध्ययन–मापन व मूल्यांकन में बहुत अन्तर है। मापन में विषय-वस्तु एक पहलू है जबकि मूल्यांकन पूरे वातावरण के विषय में बताता है।

मूल्यांकन व मापन में सम्बन्ध–मापन की भाँति मूल्यांकन एक विस्तृत प्रत्यय है। मापन एक मात्रात्मक विवेचन है जबकि मूल्यांकन सांस्कृतिक अथवा वैज्ञानिक संदर्भ में एक गुणात्मक विवेचन है। अतः मूल्यांकन एक मानसिक क्रिया है और मापन स्थूल क्रिया है। मूल्यांकन उद्देश्य के विषय में बताता है, मापन 'कितने' से सम्बन्ध रखता है। मापन का लक्ष्य सभी विषयों का अंकीकरण करना है। मूल्यांकन उन अंकों की व्याख्या करता है और उसमें आवश्यक सुधार के लिए आधार प्राप्त करता है। इस प्रकार मापन और मूल्यांकन में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मूल्यांकन व परीक्षण (Evaluation and Testing)–परीक्षाओं के द्वारा छात्र सूचनाएं अर्जित करते हैं। यह एक सूचना अर्जित करने का साधन है, क्योंकि मूल्यांकन का आधार विस्तृत है। अतः मूल्यांकन मापन पर निर्भर करता है। मापन का क्षेत्र सीमित है, इसलिए मापन परीक्षण पर निर्भर करता है। किसी भी छात्र के विषय में सूचनायें एकत्रित करने के लिए परीक्षण सहायता करता है। इसी आधार पर सूचनायें एकत्रित की जाती हैं। मापन के लिए सूचनाओं का एकत्रीकरण होता है। अतः मूल्यांकन की क्रिया को विवेचन की प्रक्रिया माना गया है।

गणित शिक्षण में मापन बहुत उपयोगी है। इसका उपयोग निम्न क्षेत्रों में किया जाता है–

(i) **वर्गीकरण के लिए**–विद्यालय में कक्षा विभाजन के लिए, अभिवृद्धि, योग्यता तथा शैक्षिक स्तर के आधार पर छात्रों का विभाजन करने के लिए मापन का प्रयोग किया जाता है।

(ii) **तुलना के लिए**–विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं में भाग लेने वाले छात्रों का स्तर निर्धारण करने के लिए तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसके लिए मापन आवश्यक है।

(iii) **प्रवेश के लिए**–गणित विषय में प्रवेश देने के लिए विशेष विद्यालयों में संख्या सीमित होती है।

(iv) **निवारण के लिए**–शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक के सामने आने वाली किसी भी समस्या का समाधान जब तक सम्भव नहीं हैं, तब तक कि उससे सम्बन्धित सभी कारणों का विश्लेषण न कर लिया जाए। इसी के आधार पर शिक्षक अपनी योग्यता का अनुमान लगा सकते हैं। इनका निवारण करने के लिए मापन एक मजबूत आधार प्रदान कर सकता है।

(v) **अनुसंधान**–समस्याओं का समाधान खोजने के लिए मापन एक नियोजित प्रयास के लिए आधार प्रदान करता है।

(vi) **भविष्यवाणी**–छात्रों के अर्जन के विषय में पूर्वानुमान लगाना शिक्षक की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

परीक्षण दो या अधिक व्यक्तियों के विषय में तुलना करने की एक व्यवस्थित विधि है। यह एक ऐसी परीक्षा है, जो बुद्धि व्यक्तित्व, अभिवृत्ति और निवारण के संदर्भ में समूह में किसी व्यक्ति की सापेक्षिक स्थिति के बारे में सूचना देती है।

शैक्षणिक उद्देश्य तथा उनसे सम्बन्धित व्यवहार परिवर्तन प्राप्त हो जाने के पश्चात् मूल्यांकन विधियों का स्वरूप निश्चित करना पड़ता है।

परीक्षण स्वतन्त्र अनुक्रियात्मक तथा कुछ अन्य निश्चित तरीकों की सहायता से किया जा सकता है।

◆◆◆

मूल्यांकन [Evaluation]

2. मूल्यांकन शब्द को परिभाषित कीजिए। मूल्यांकन के विभिन्न प्रकारों के बारे में बताये। (Define the term evaluation. Explain different types of evaluation.)

अथवा

मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं? मूल्यांकन प्रक्रिया का वर्णन करो। (What do you understand by evaluation? Describe the process of evaluation.)

अथवा

मूल्यांकन प्रक्रिया पर टिप्पणी कीजिए। (Write a note on the evaluation process.)

उत्तर–शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षक ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है, जिससे बालक में वांछित व्यावहारिक परिवर्तन आ सके। इस कार्य के लिये शिक्षक को विशेष शिक्षण सामग्री, शिक्षण विधि आदि को साधनों के रूप में प्रयोग करना पड़ता है। शिक्षण प्रक्रिया का प्रारम्भिक बिन्दु शिक्षण उद्देश्य होता है। इसके लिए शिक्षण के उद्देश्य निश्चित होने चाहिए। इस कार्य के पश्चात् उसमें स्वाभाविक रूप से यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, कि वह यह जान सके कि उद्देश्यों की प्राप्ति में वह कितना सफल रहा। मूल्यांकन वह प्रमाण है जिसके आधार पर शिक्षक को अपने प्रयासों की सफलता एवं असफलता का बोध होता है। यह पृष्ठ पोषण का भी कार्य करता है। इससे शिक्षक अपनी शिक्षण प्रक्रिया को तथा पाठ्य-वस्तु को सुधारने का प्रयत्न करता है।

मूल्यांकन व्यवहार परिवर्तनों को इकट्ठा करने वाली प्रणाली विधि है। मूल्यांकन द्वारा व्यवहार परिवर्तन की दिशाओं और सीमाओं का निर्णय लिया जाता है। यह शैक्षिक उपलब्धियों को जानने की नवीन विधि है और प्रचलित परीक्षा प्रणाली की अपेक्षा अधिक व्यापक है।

मूल्यांकन के अन्तर्गत व्यक्ति या समाज की दृष्टि से जो वांछनीय होता है, उसे मान लिया जाता है। कोठारी आयोग के अनुसार मूल्यांकन एक अनवरत् क्रिया है। इसका शिक्षण उद्देश्यों से गहरा सम्बन्ध है। मूल्यांकन के लिए सबसे पहले घटना अथवा तथ्य के बारे में विवरण प्राप्त किया जाता है। यह विवरण गुणात्मक या मात्रात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। मूल्यांकन की प्रक्रियाओं में भी परिवर्तन किये जाते हैं। कुछ नियमों और सिद्धान्तों का अनुसंरक्षण करते हुए वस्तुओं की मात्रात्मक प्रक्रिया माप कही जा सकती है। विभिन्न निरीक्षणों, वस्तुओं अथवा घटनाओं को कुछ विशेष नियमों के अनुसार संकेत चिह्न अथवा आंकिक संकेत प्रदान करने की क्रिया को मापन क्रिया कहते हैं।

मापन किसी प्रक्रिया, का मात्रात्मक विवेचन है, जबकि मूल्यांकन किसी सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा वैज्ञानिक संदर्भ में एक गुणात्मक विवेचन है। मापन एक स्थूल क्रिया है। जबकि मूल्यांकन एक मानसिक क्रिया है। मापन तथा मूल्यांकन एक दूसरे के पूरक हैं। मापन द्वारा प्रत्येक का अंकीकरण करने को अपना तथ्य मानता है, जबकि मूल्यांकन उन अंकों की व्याख्या करके सुधार के लिए आदान-प्रदान करता है। मूल्यांकन का एक विस्तृत आधार होता है। इसलिए यह मापन पर निर्भर करता है। परीक्षण छात्रों के द्वारा अर्जित सूचनाओं को एकत्रित करने का साधन है। शिक्षा में शिक्षक के सामने आने वाली किसी भी समस्या का सफलतापूर्वक समाधान जब तक नहीं हो सकता, तब तक उससे सम्बन्धित कारणों का विश्लेषण न कर लिया जाये।

जीव-विज्ञान शिक्षण में हम पहले से निर्धारित शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सीखने के अनुभवों को निश्चित करते हैं। विभिन्न शैक्षणिक उद्देश्यों का मापन किसी एक मूल्यांकन विधि के माध्यम से सम्भव नहीं है। किसी निश्चित उपकरण एवं विधि के माध्यम से किसी एक ही उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। जैसे जीव-विज्ञान में छात्रवृत्ति के चयन के लिए परीक्षण, निष्पत्ति के परीक्षण के लिए कम वैध होगा।

मूल्यांकन निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता है—परीक्षाएँ, तथा परीक्षण।

एक अच्छे परीक्षण में सत्यता, वैधता, वस्तुनिष्ठता एवं विभेदकारिता आदि गुणों का होना आवश्यक है।

मूल्यांकन प्रक्रिया *(Evaluation Process)*

मूल्यांकन वह प्रणाली है जिसके द्वारा व्यवहार परिवर्तनों को एकत्रित किया जाता है। इसके द्वारा उन परिवर्तनों की दिशाओं और सीमाओं का निर्णय लिया जाता है। शिक्षण प्रक्रिया में शैक्षिक उपलब्धियों को जानने की नवीन विधि है। शिक्षण अनुसंधान विषय कोष के अनुसार—"मूल्यांकन का प्रयोग मापन की पारस्परिक परीक्षा व परीक्षण को विस्तारपूर्वक बनाने के लिए किया गया है।"

रैमर और गैज ने मूल्यांकन को इस प्रकार परिभाषित किया है—

"मूल्यांकन के अन्तर्गत समाज या व्यक्ति दोनों की दृष्टि से जो अच्छा हो उसे मानकर चलना चाहिए।"

टोलगरसन और ऐडम्स के अनुसार मूल्यांकन का अर्थ, किसी वस्तु या प्रक्रिया का मूल्य निश्चित करना है। अतः शैक्षिणक मूल्यांकन का अर्थ है शिक्षण प्रक्रिया से उत्पन्न अनुभवों के विषय में निर्णय लेना।

NCERT के अनुसार मूल्यांकन एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया गया है। कहां तक शिक्षण उद्देश्य पूर्ण किये गए हैं।

बदलते हुए शैक्षणिक परिवेश में परीक्षा की विचारधारा भी परिवर्तित हो रही है। शिक्षा में मूल्यांकन एक नई विचारधारा है।

मूल्यांकन छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन को मापने की क्रिया है।

राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एक प्रशिक्षण परिषद् की विचारधारा के अनुसार मूल्यांकन प्रक्रिया में तीन बिन्दुओं पर विचार किया जाता है–

(1) उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हुए हैं।

(2) कक्षा में दिए गए अनुभव किस सीमा तक प्रभावशाली हैं।

(3) शिक्षा के उद्देश्य कितने अच्छे ढंग से सम्पन्न हुई हैं।

जीव-विज्ञान शिक्षण में हम पहले से निर्धारित शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सीखने के अनुभवों को निश्चित करते हैं। शैक्षणिक उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हुए, आदि का मापन करते हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राप्त उद्देश्य सीखने के अनुभव तथा मूल्यांकन में एक विशेष सम्बन्ध है। यदि प्राप्त उद्देश्य शिक्षा का लक्ष्य है, तो सीखने के अनुभव लक्ष्य प्राप्ति के साधन हैं और मूल्यांकन इसका सबूत है।

मूल्यांकन के कार्य–मूल्यांकन शैक्षिक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है, और शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया में प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) कार्यक्रमों तथा पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता को देखने के लिए।

(2) शैक्षणिक उद्देश्यों का चयन तथा मूल्यांकन करना।

(3) शैक्षणिक उद्देश्यों का स्पष्टीकरण।

(4) शिक्षण प्रक्रिया में सुधार।

(5) शिक्षण के प्रभावशाली अनुभवों का चयन।

(6) निर्देशन में सुधार।

(7) प्रभावशाली शिक्षण को प्रेरित करना।

(8) शिक्षण विधियों, पाठ्य-वस्तु, शिक्षक, पुस्तकों आदि की जांच करना।

मूल्यांकन प्रक्रिया के चरण–मूल्यांकन प्रक्रिया के निम्न पद हैं–

(1) उद्देश्यों का चयन–परीक्षण किये जाने वाले शैक्षणिक उद्देश्यों का चयन तथा उनकी परिभाषा किसी भी मूल्यांकन प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग है। शैक्षणिक उद्देश्यों के आधार पर ही शैक्षणिक निष्पत्ति के अर्थनिरूपण का प्रयास किया जाता है।

(2) मूल्यांकन उपकरण एवं विधियों का चयन–शैक्षणिक उद्देश्यों के चयन एवं परिभाषीकरण के पश्चात् मूल्यांकन में प्रयुक्त उपकरणों एवं विधियों का चयन किया जाना चाहिए। यद्यपि उपकरणों एवं विधियों का चयन मापित उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है, फिर भी अच्छे उपकरण की विशेषताओं–वैधता, सत्यता, वस्तु, निष्ठता तथा उपयोगिता का भी ध्यान रखना चाहिए। प्रभावशाली मूल्यांकन के लिए विभिन्न मूल्यांकन विधियों का चयन करना चाहिए।

(3) उपकरणों का प्रशासन–शैक्षणिक उद्देश्यों के आधार पर शैक्षणिक निष्पत्ति के मापन के लिए चयन किए गए मूल्यांकन उपकरणों एवं विधियों का प्रशासन कीजिए।

(4) परिणामों की व्याख्या–परीक्षण प्रशासन के पश्चात् प्राप्त अंकों का कोई महत्त्व नहीं है। इन अंकों की व्याख्या तथा विवेचन ही छात्र के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करते हैं।

(5) मूल्यांकन परिणामों का उपयोग–मूल्यांकन के परिणामों का शिक्षण प्रक्रिया के सुधार के लिए प्रयोग करना चाहिए। परिणामों को प्राप्त कर उनका उपयोग न करना समय और श्रम दोनों ही की बरबादी है।

(6) मूल्यांकन के उपकरण एवं विधियाँ–विभिन्न शैक्षणिक उद्देश्यों का मापन किसी एक मूल्यांकन विधि के माध्यम से संभव नहीं है। किसी निश्चित उपकरण एवं विधि के माध्यम से किसी एक ही उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है, जैसे जीव-विज्ञान में छात्रवृत्ति के चयन के लिए परीक्षण, निष्पत्ति के परीक्षण के लिए कम वैध होगा।

मूल्यांकन की विभिन्न विधियां हैं। इन्हें विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। मूल्यांकन की निम्नलिखित विधियां हैं–

(1) **परीक्षाएं**–परीक्षाएं विभिन्न परीक्षणों के माध्यम से सम्पादित की जाती हैं। परीक्षण का चयन परीक्षा के उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। मुख्य रूप से परीक्षाएं निम्न प्रकार की होती हैं–

(क) **लिखित परीक्षा**–ये प्रायः विषय अध्यापक द्वारा आयोजित की जाती है। इससे ये निबन्धात्मक या वस्तुनिष्ठ प्रकार की होती हैं।

(ख) **मौखिक परीक्षा**–विषय का विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त करने के लिए अध्यापक द्वारा आयोजित की जाती है।

(ग) **प्रयोगात्मक परीक्षा**–विभिन्न प्रयोगात्मक विषयों में छात्रों की कुशलताओं तथा सैद्धान्तिक ज्ञान के व्यावहारिक उपयोग की क्षमता का मापन करने के लिए प्रयोगात्मक परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं।

(2) **निरीक्षण**–अनुभव के आधार पर प्राप्त सूचना तथा वैज्ञानिक विधियों पर आधारित सूचना भी मूल्यांकन विधि है। मुख्य निरीक्षण विधियां निम्नलिखित हैं–

(1) आकस्मिक अभिलेख
(2) निर्धारण मापनी
(3) समाजमिति विधि
(4) प्रश्नावली
(5) आत्मकथा
(6) साक्षात्कार

मूल्यांकन का जीव-विज्ञान शिक्षण में महत्त्व

मूल्यांकन के द्वारा शिक्षण प्रक्रिया में सफलता की सम्भावना बढ़ जाती है। इसकी सहायता से हम अर्जित लक्ष्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं तथा इसके द्वारा हम अपनाई गई विधि की सहायता से रूपान्तरण कर सकते हैं।

मूल्यांकन उद्देश्य के आधार पर होता है। मूल्यांकन पर ही शिक्षक की सफलता निर्भर करती है। शिक्षक के सम्मुख उद्देश्य स्पष्ट करने के लिए मूल्यांकन मानदण्ड का काम करता है।

छात्रों के दृष्टिकोण से प्राप्त परिणाम का ज्ञान एक प्रेरक की तरह कार्य करता है। अतः प्रेरणा की दृष्टि से मूल्यांकन उपयोगी है। शिक्षक को अपने पाठ को नियोजित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए प्रेरणा मिलती है।

मूल्यांकन छात्रों को व्यावसायिक और शैक्षिक निर्देश देने में सहायता करता है। मूल्यांकन में व्यक्तिगत भिन्नता एक आधार प्रदान करती है जो निर्देश देने में सहायता करती है।

मूल्यांकन पाठ्यक्रम के परिवर्तन तथा परिमार्जन में भी उपयोगी है। पाठ्यक्रम वह साधन है जिसे शिक्षक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग करता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम मूल्यांकन से सम्बन्ध रखता है।

अतः मूल्यांकन एक व्यापक एवं उद्देश्य केन्द्रित प्रक्रिया है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन का कार्य शिक्षा को उद्देश्य केन्द्रित करना है। मूल्यांकन प्रक्रिया के आधार पर व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसे व्यक्ति के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करने वाली प्रणाली कहा जाता है।

◆◆◆

(1) स्थापन मूल्यांकन (Placement Evaluation)
(2) निदानात्मक मूल्यांकन (Diagnostic Evaluation)
(3) निर्माणात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation)
(4) संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation)

(1) स्थापन मूल्यांकन (Placement Evaluation)–स्थापन मूल्यांकन की सहायता से यह ज्ञात किया जाता है कि बालकों में वह गुण तथा व्यवहार जो पढ़ाये जाने वाले पाठ या अन्य प्रकार के अधिगम के लिए आवश्यक है, उपस्थित है या नहीं। पारम्परिक शिक्षण पद्धति में इसे पूर्व ज्ञान कहा जाता है। आधुनिक शिक्षण पद्धति में स्थापन मूल्यांकन हेतु विभिन्न प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है। जैसे तत्परता परीक्षण अभिवृत्ति, परीक्षण पाठ्यक्रम उद्देश्यों पर आधारित पूर्व परीक्षण आदि।

(2) निर्माणात्मक मूल्यांकन (Diagnostic Evaluation)–इस प्रकार के मूल्यांकन की सहायता से शिक्षण के दौरान छात्रों की अधिगम से सम्बन्धित उन्नति को नियन्त्रित किया जाता है। सफलता की सूचना से छात्र उत्साहित एवं प्रेरित होते हैं। इससे उनका व्यवहार दृढ़ तथा सही दिशा में हो जाता है। पृष्ठ-पोषण की सहायता से शिक्षक अपनी शिक्षक पद्धति में सुधार कर लेता है। छात्र तथा शिक्षक दोनों को ही पृष्ठ-पोषण के माध्यम से सम्बन्धित सफलताओं तथा असफलताओं का बोध होता रहता है। शिक्षक पृष्ठ-पोषण के द्वारा यह ज्ञात कर लेता है कि उसे अपनी शिक्षण पद्धति में क्या तथा कहां सुधार करना है। इस प्रकार के मूल्यांकन के लिए आमतौर पर शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षक शिक्षण के छोटे से भाग पर परीक्षण करता है और यह जानने की कोशिश करता है कि छात्रों ने बताई गई सामग्री को याद किया है या नहीं। प्रेक्षण विधि की सहायता से छात्रों की अधिगम से सम्बन्धित उन्नति तथा अधिगम दोनों को ज्ञात करने का प्रयोग किया जाता है।

(3) निदानात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation)–इस प्रकार के मूल्यांकन का प्रयोग छात्रों की उन कठिनाइयों को ज्ञात करने के लिए किया जाता है, जिनका निदान शिक्षण के दौरान सम्भव नहीं होता। इस प्रकार मूल्यांकन के लिए विभिन्न विषयों में निदानात्मक परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। जब कोई छात्र किसी विषय में बार-बार असफल हो जाता है तो निदानात्मक मूल्यांकन के द्वारा उनकी असफलता का कारण पता लगाने में सहायता मिलती है। आवश्यकता पड़ने पर कमजोर छात्रों की निदानात्मक मूल्यांकन द्वारा जांच की जाती है। इस प्रकार प्राप्त परिणाम शिक्षण के लिए उपचारात्मक आधार बनाते हैं।

(4) संकलनात्मक मूल्यांकन (Summative Evaluation)–शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति की सीमा का पता लगाने के लिए संकलनात्मक मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रमुख कार्य छात्रों को श्रेणीबद्ध करना अथवा डिवीजन देना है। संकलन मूल्यांकन के लिए प्रायः शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। इन मूल्यांकनों के माध्यम से परोक्ष रूप से यह भी ज्ञात हो जाता है कि पाठ्यक्रम के उद्देश्य कितने सही हैं तथा किस सीमा तक शिक्षण विधि प्रभावशाली है। इन परीक्षणों की प्रकृति शिक्षण उद्देश्यों पर निर्भर करती है। उपलब्धि परीक्षण, निर्धारण-मापनी का प्रयोग मुख्य रूप से संकलनात्मक मूल्यांकन के लिए किया जाता है।

परीक्षण तथा परीक्षण की विधियाँ–शैक्षणिक उद्देश्य प्राप्त होने के पश्चात् उनसे सम्बन्धित व्यवहार परिवर्तन एवं पाठ-वस्तु के मालूम होने के पश्चात् मूल्यांकन की विधियों को निश्चित करना पड़ता है। परीक्षण के कुछ तरीके स्वतन्त्र अनुक्रियात्मक तथा कुछ निश्चित क्रियात्मक होते हैं। परीक्षण के निम्न प्रकार हैं–

(1) मौखिक परीक्षण (Oral Test)–मौखिक परीक्षण जीव-विज्ञान में एक पूरक परीक्षण के रूप में प्रयोग किया जाता है। बहुत बार परीक्षण में एकांश अस्पष्ट होते हैं, जिनसे छात्र प्रश्न का उद्देश्य और अर्थ समझने में भ्रमित हो जाते हैं। इन परीक्षणों के माध्यम से गणित के आधारभूत सिद्धान्तों का ज्ञान दिया जाता है और यह पता लगाया जाता है कि छात्रों में इससे सम्बन्धित कितनी सूझ-बूझ है। मौखिक परीक्षण में प्रश्नों के उद्देश्यों व उनके अर्थ की व्याख्या की जाती है।

इस परीक्षण में विषय सम्बन्धी ज्ञान का अध्ययन गहराई से किया जाता है। इस विधि में कम समय में अधिक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। शिक्षक अपने प्रश्नों को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकता है और इस प्रकार रटे हुए प्रश्नों के विषयों में जाना जा सकता है। इस प्रकार की परीक्षा में अवांछनीय साधनों का प्रयोग सम्भव नहीं है। इसमें छात्र अपने उत्तर को सम्पादित नहीं कर सकते और न ही अपने उत्तर को परिवर्तित कर सकते हैं। शिक्षक को क्लास परीक्षण के द्वारा छात्र द्वारा अर्जित ज्ञान की सही स्थिति जानने का अवसर प्राप्त होता है।

(2) लघु उत्तरीय परीक्षण–यह निबन्धात्मक परीक्षण का परिमार्जित रूप है। इस विधि द्वारा निबन्धात्मक परीक्षण की विश्वसनीयता एवं वैधता को प्रभावित करने वाले कारणों को दूर किया जाता है। इस परीक्षण के निम्न लाभ हैं–

(1) इसमें निश्चित सूचनाओं तथा तथ्यों के बारे में पूछा जाता है। ये छात्रों को उत्तर देने के लिए निश्चित दिशा प्रदान करते हैं। यह परीक्षण स्पष्ट होते हैं।

(2) प्रश्नों की संख्या निबन्धात्मक प्रश्नों की अपेक्षा अधिक होती है। इसलिए परीक्षण की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। अपेक्षाकृत अंकन की वस्तुनिष्ठता भी बढ़ जाती है।

(3) यह परीक्षण अधिक वैध है।

(4) इस परीक्षण में तर्क, चिन्तन आदि मानसिक शक्तियों को अच्छी तरह मापा जा सकता है।

(5) इसमें पाठ्यक्रम अधिक सीमा तक प्रयुक्त किया जा सकता है।

(6) छात्रों को निश्चित व सीमित वाक्यों में उत्तर देना होता है। इससे छात्रों में व्यर्थ की बातें लिखने की आदत दूर हो जाती है।

(3) निबन्धात्मक परीक्षण–निबन्धात्मक परीक्षण में प्रश्नों की संख्या अन्य परीक्षणों की तुलना में कम होती है। छात्रों को अपनी इच्छानुसार प्रश्नों से सम्बन्धित तथ्यों को संगठित व प्रकाशित करने की स्वतन्त्रता होती है। इस परीक्षण के द्वारा विभिन्न कौशलों एवं अन्य मानसिक शक्तियों का मापन सम्भव है। यह परीक्षण प्रायः तथ्यों के पुनः स्मरण पर आधारित होते हैं।

निबन्धात्मक परीक्षण में अनेक प्रकार के प्रश्न होते हैं। प्रश्नों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है–

(i) संगठित एवं तुलनात्मक–इस विधि में प्रश्नों को संगठित किया जाता है। तुलना की जाती है तथा क्रमबद्ध करके गुण-दोष बनाए जाते हैं।

(ii) सम्बन्ध स्थापित करना–जैसे क्यों, कैसे, परिणाम निकालना इत्यादि प्रकार के प्रश्नों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

(iii) व्याख्या तथा प्रयोग–इसमें प्रश्नों को स्पष्ट करना, कारण बताइए, सार लिखें, अर्थ बताएं आदि प्रकार के प्रश्न होते हैं।

(iv) तथ्यों का चयनित पुनः स्मरण–इसमें प्रश्नों को सूचीबद्ध करके, परिभाषित किया जाता है तथा वर्णन किया जाता है।

(v) समस्या समाधान एवं रचनात्मक–जिस प्रकार मूल्यांकन करें, सिद्ध करें, तथा तर्क दीजिये आदि सम्मिलित हैं।

निबन्धात्मक प्रश्न इस प्रकार के होने चाहिए, जिसके द्वारा शिक्षक अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर सकें। इसमें अधिक विशिष्ट प्रकार के प्रश्न दिए जाने चाहिए जिनका उत्तर भी संक्षिप्त हो।

(4) वस्तुनिष्ठ परीक्षण–इस परीक्षण में प्रश्नों की संख्या अधिक होती हैं। यह प्रश्न छोटे-छोटे भागों में वर्गीकृत होते हैं। प्रत्येक एकांश का निश्चित उत्तर होता है। इन परीक्षणों में कम समय में अधिक उत्तर देने होते हैं। इसमें अनेक प्रकार के प्रश्न होते हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में भ्रम उद्देश्य शब्द के कारण होता है। ऑब्जेक्टिव शब्द उद्देश्य या लक्ष्य के लिए या अंकन में वस्तुनिष्ठता भी प्रयोग किया जाता है। परीक्षण उद्देश्य प्राप्ति के लिए किया जाता है। अतः इसका निर्माण आधार वस्तुतः यही होता है।

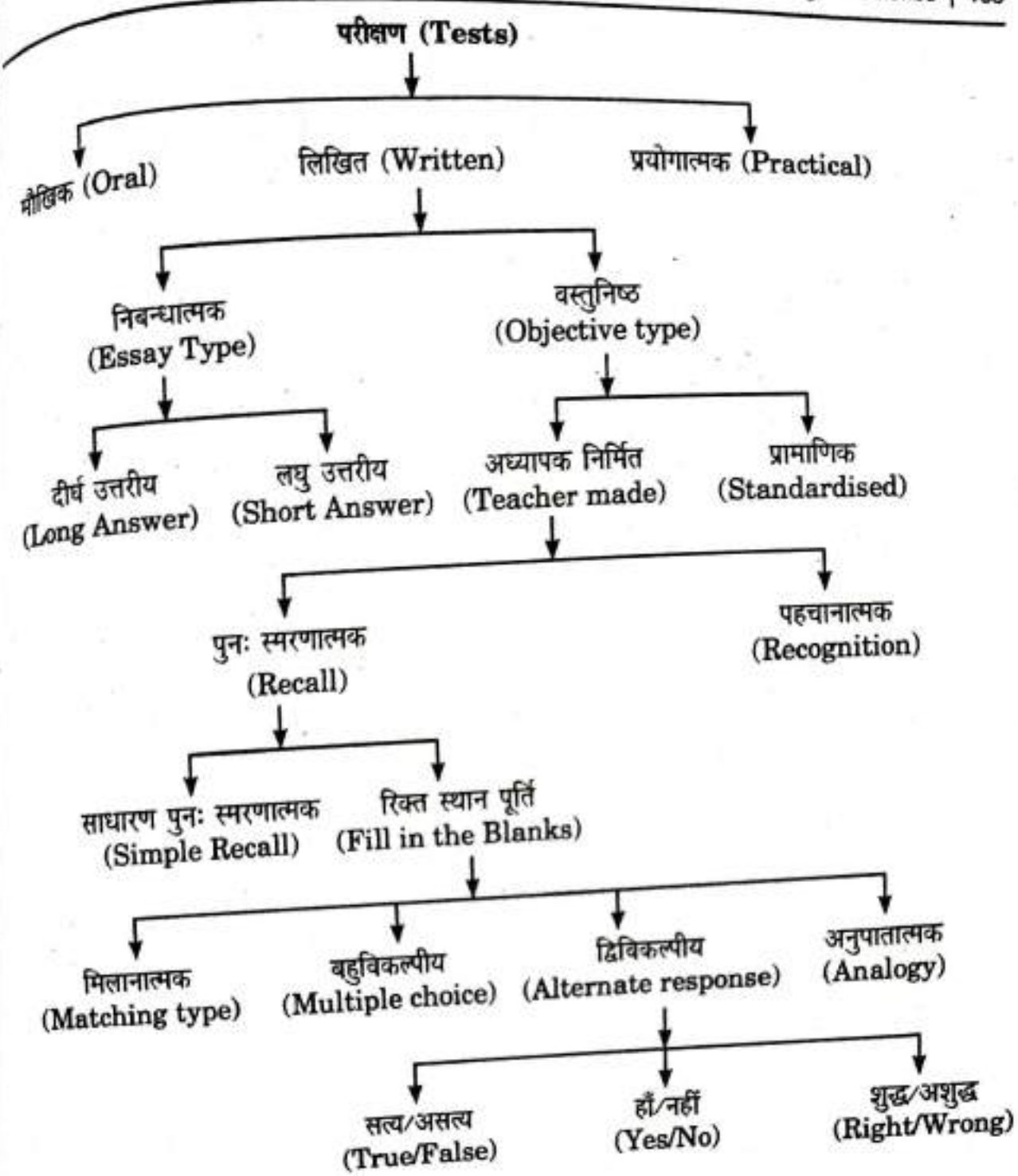

◆◆◆

4. वस्तुनिष्ठ परीक्षण का क्या अर्थ है? वस्तुनिष्ठ परीक्षण के गुण-दोषों का वर्णन करो। वस्तुनिष्ठ परीक्षण व निबंधात्मक परीक्षण में क्या अंतर है?
(What is the meaning of objective types test? Describe the merits and demerits of objective type test. What is the difference between objective type test and essay type test.)

अथवा

एक अच्छे परीक्षण की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
(Explain the attributes of good test.)

अथवा

एक अच्छे प्रश्न-पत्र की क्या विशेषताएँ हैं? विभिन्न प्रकार के वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का वर्णन कीजिए।
(What are the attributes of good test? Describe the different types of objective tests.)

अथवा

एक अच्छे प्रश्न-पत्र की क्या विशेषताएँ हैं? वस्तुनिष्ठ उपलब्धि प्रश्न-पत्र की संरचना विधि की व्याख्या कीजिए।

(What are the attributes of good test? Explain the procedure of construction of an objective type achievement test.)

अथवा

एक वस्तुनिष्ठ उपलब्धि प्रश्न-पत्र की संरचना विधि की व्याख्या कीजिए।

(Explain the procedure of construction of an objective type achievement test.)

उत्तर–इन परीक्षणों में प्रश्नों की संख्या अधिक होती है। यह प्रश्न छोटे-छोटे एकांशों के रूप में होते हैं। इस प्रकार के परीक्षण में कम समय में अधिक प्रश्नों का उत्तर देना होता है। प्रत्येक एकांश का उत्तर निश्चित होता है। इसमें अनेक प्रकार के प्रश्न होते हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण को उद्देश्यनिष्ठ परीक्षण भी कहा जाता है उद्देश्यनिष्ठ परीक्षण का अर्थ है उद्देश्यों के अनुरूप मापन की विधि का चयन करना या निर्माण करना। कोई भी निबन्धात्मक, लघु उत्तरीय या वस्तुनिष्ठ परीक्षण जिसमें एकांश में उद्देश्य स्पष्ट हों और उद्देश्य प्रदर्शित हो रहा हो उसे उद्देश्यनिष्ठ कहा जा सकता है। वस्तुनिष्ठ में अंकन में एकरूपता और वस्तुनिष्ठता को आधार माना जाता है।

परीक्षण उद्देश्य प्राप्ति में साक्षी प्रदान करने के लिए किया जाता है। अतः परीक्षण निर्माण का आधार वस्तुनिष्ठता ही है। निबन्धात्मक प्रणाली की विश्वसनीयता तथा वैधता इसी कारण सन्देहजनक है, क्योंकि उनमें तथा उद्देश्यों के बीच सीधा सम्बन्ध नहीं है। प्रश्नों की संख्या सीमित होने के कारण पूरा पाठ्यक्रम मूल्यांकित नहीं हो पाता तथा अंकदान में वैयक्तिकता का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। प्रश्नों का उत्तर निश्चित शब्दों में नहीं दिया जाता। वस्तुनिष्ठ प्रश्न इस दोष को दूर करता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षण की सहायता से छात्रों के अर्जन का मापन और अधिक तरीके से सम्भव हो सकता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण के गुण–इस परीक्षण के निम्नलिखित गुण हैं–

(i) अंकदान में वैयक्तिकता का प्रभाव पड़ता है।
(ii) समय कम लगता है, अतः समय में मितव्ययिता रहती है।
(iii) रटने की आदत नहीं बनती।
(iv) न्यायिक दृष्टिकोण होता है।
(v) यह परीक्षण निष्पक्ष होते हैं।
(vi) उद्देश्यों से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते हैं।
(vii) इनका मापन सम्भव होता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण के दोष–

(i) इस विधि में पूर्व परीक्षण का प्रभाव रहता है।
(ii) संगठित पाठ्य-वस्तु का प्रावधान नहीं है।
(iii) इस परीक्षण में निर्माता अत्यधिक कुशल होना चाहिए।
(iv) अनुमान का प्रभाव दिखाई देता है।
(v) वस्तुनिष्ठ परीक्षण में मौलिक परीक्षण की अवेहलना की जा सकती है।
(vi) यह परीक्षण सभी विषयों के लिए सम्भव नहीं है।
(vii) आर्थिक दृष्टि से अधिक खर्चीला है।
(viii) भावात्मक उद्देश्यों और अनोगत्यात्मक कौशलों का मापन सम्भव नहीं है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण व निबन्धात्मक परीक्षण में अन्तर

क्र.सं.	निबंधात्मक परीक्षण	वस्तुनिष्ठ परीक्षण
1.	इस परीक्षण में प्रश्नों की संख्या कम होती है। प्रश्नों के उत्तर बड़े होते हैं। प्रश्न सामान्य प्रकार के होते हैं।	प्रश्नों की संख्या अधिक होती है। ये विशिष्ट प्रकृति के होते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर कभी प्रश्नों से छोटा होता है। प्रश्न विशिष्ट प्रकार के होते हैं।
2.	छात्रों का अधिकांश समय चिन्तन व लेखन में लगता है।	छात्रों का अधिकांश समय चिन्तन व पाठन में लगता है।
3.	निर्माण करना सरल किन्तु सुनिश्चित रूप से अंकदान करना कठिन होता है।	निर्माण करना कठिन होता है परन्तु इनका अंकदान सरल होता है।
4.	छात्रों से क्या अपेक्षा है और उन्हें क्या कार्य करना है; ये स्पष्ट शब्दों में व्यवत करना नहीं होता।	छात्रों को क्या करना है और उनसे क्या अपेक्षा है, ये **व्यक्त** नहीं होता है।
5.	छात्रों को अपने उत्तर स्वयं नियोजित करने का अवसर मिलता है तथा वे उसे अपने शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं।	छात्रों को विभिन्न निर्धारित विकल्पों में से किसी एक का चयन करना होता है।
6.	परीक्षण की गुणवत्ता का निर्धारण अंकदाता के अंक देने के कौशल पर निर्भर करता है।	परीक्षण की गुणवत्ता का निर्धारण परीक्षण निर्माणकर्ता के कौशल पर निर्भर करता है।
7.	यह परीक्षण निर्माता को अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने के लिए अधिक स्वतन्त्रता देता है। इसके साथ छात्रों को भी वैयक्तिकता के लिए स्वतन्त्रता होती है।	इस विधि में छात्र को अपने विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नहीं होती। यद्यपि परीक्षण निर्माणकर्ता को अपनी अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।
8.	यह सामान्यतः धोखा देने की प्रकृति को प्रोत्साहित करता है।	यह अनुमान प्रकृति को प्रोत्साहित करता है।

9. एक वस्तुनिष्ठ उपलब्धि प्रश्न-पत्र की रचना की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
(Describe the procedure for construction of an objective type achievement test.)

अथवा

एक अच्छे उपलब्धि परीक्षण की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
(Describe the attributes of a good achievement test.)

उत्तर–निष्पत्ति परीक्षण/उपलब्धि परीक्षा (Achievement Test)–शिक्षा में गुणात्मक विकास की दृष्टि से मापन का बहुत महत्व है। शैक्षिक मापन के लिए शिक्षण और परीक्षण में समन्वय होना चाहिए। यदि शिक्षक को मापन की प्रविधियों का सही ज्ञान नहीं हो तो वह अपने शिक्षण को प्रभावी नहीं बना सकता। विद्यालयों में ज्ञानात्मक पक्ष से संबंधित ज्ञान ही अधिक प्रदान किया जाता है। शिक्षा विशेषज्ञों के विचार में भी बालक के सम्पूर्ण विकास के लिए ज्ञानात्मक निष्पत्तियाँ ही शुद्ध न्यादर्श हो सकती हैं। इसलिए शैक्षिक मापन में ज्ञानात्मक पक्षों के मापन को ही महत्व दिया जाता है।

शैक्षिक मापन के उद्देश्य होते हैं–

(a) छात्रों ने शिक्षण के द्वारा कितना सीखा है अर्थात् कितना ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

(b) शिक्षण के द्वारा भी जो विषय-वस्तु या उसका भाग नहीं सीख सके हैं, उसका क्या कारण रहा।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Test)–वस्तुनिष्ठ प्रश्न निबंधात्मक प्रश्न की तुलना में बहुत अधिक गिनती में पद होते हैं। वस्तुनिष्ठ पद बनाने में अत्यधिक सावधानी और विचारों को ध्यान में रखना पड़ता है। ये परीक्षण वैध और विश्वसनीय होते हैं।

ये दो प्रकार के होते हैं–1. शिक्षक द्वारा निर्मित, 2. दक्ष लोगों द्वारा बनाए गए मानवीकृत परीक्षण।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के लाभ (Advantages)–

1. इन प्रश्नों के उत्तरों की वस्तुनिष्ठता से अंक निर्धारण संभव है।
2. वस्तुनिष्ठ प्रश्नों से पाठ्यचर्या से अधिक भाग का मूल्यांकन करना संभव है।
3. इसमें समय की बचत है।
4. इन प्रश्नों में अध्यापक द्वारा पक्षपात किया जाना संभव नहीं है।
5. वस्तुनिष्ठ प्रश्नों द्वारा थोड़े ही समय में अधिक प्रश्नों का उत्तर दिया जाना संभव होता है।
6. वस्तुनिष्ठ प्रश्नों द्वारा स्मृति, अर्जित ज्ञान, बोध और विचार संग्रह की जाँच की जा सकती है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न बनाते समय सावधानियाँ–

1. प्रश्नों का उत्तर निश्चित होने चाहिए।
2. उपलब्ध समय के अनुसार ही प्रश्नों की संख्या रखी जाए।
3. प्रश्नों के कठिनाई - स्तर तथा विभेदकारिता (Discriminating) का ध्यान रखना चाहिए।
4. प्रश्न ऐसे बनाए जाएं कि वैधता (Validity) तथा विश्वसनीयता (Reliability) लाई जा सकें।
5. प्रश्न ऐसे बनाएँ जाएँ कि छात्र को अंदाज (Guess) की संभावना न हो।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के प्रकार *(Types of Items)*

यह प्रश्न मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–

(I) प्रत्यास्मरण प्रकार (Recall Type)–इस प्रकार के प्रश्नों में छात्रों को पूर्व सीखे गए ज्ञान से उत्तरों का प्रत्यास्मरण करना होता है। वह पहले याद किए प्रश्नों का मात्र पुनः स्मरण करते हैं। यह दो प्रकार के होते हैं–

(अ) सरल प्रत्यास्मरण (Simple Recall)

(ब) रिक्त स्थान की पूर्ति (Completion Type)

(अ) सरल प्रत्यास्मरण (Simple Recall)–इस प्रकार के प्रश्न पत्रों में छात्रों को पूर्व ज्ञान से सरल उत्तरों का प्रत्यास्मरण करना पड़ता है। छात्र को केवल अपनी स्मृति के आधार पर उत्तर देने होते हैं। इन्हें स्वतंत्र उत्तर वाले प्रश्न भी कहा जा सकता है। जैसे–

प्रश्न 1. शरीर से पानी और लवणों के अधिक नुकसान को क्या कहते हैं? (जल सूखना)

प्रश्न 2. खाने को ज्यादा देर तक पकाने से क्या होता है? (ऊर्जा)

प्रश्न 3. अमीबा में गति करने वाली इन्द्रिय कौन-सी है? (सुडोपोडिया)

(ब) रिक्त स्थान पूर्ति (Completion Type)–इस प्रश्न के प्रश्नों में अधूरे कथन को पूरा किया जाता है और छात्रों को इन्हें पूर्ण करने को कहा जाता है। इस प्रकार के पदों को रिक्त स्थानों की पूर्ति करने वाले प्रश्न कहा जाता है।

जैसे–

(i) कोशिका की खोज ..... ने की थी।

(ii) ..... ऋतु में अधिक पसीना आता है।

(iii) केन्द्रक विभाजन की प्रथम अवस्था ..... कहलाती है।

(iv) मेण्डल का प्रथम नियम ..... है।

(II) पहचान प्रश्न (Recognition Test)–इस प्रकार के प्रश्न के कई संभावित उत्तर दिए जाते हैं। इसमें एक उचित उत्तर होता है और छात्र को दूसरे गलत पदों में पहचानना होता है। परीक्षार्थी को सही उत्तर छाँटकर निशान लगाना होता है। यह निम्न प्रकार के होते हैं–

(अ) **बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)**–ऐसे प्रश्नों में हर प्रश्न के चार विकल्प दिए जाते हैं और छात्रों को उनमें से उचित, सबसे उचित आदर्श उत्तर को चुनना या सही का चिह्न (✓) कोष्ठक में लिखना होता है।

जैसे–

प्रश्न 1. शरीर की रक्षा में योगदान करता है?

(A) एण्टीथ्रोम्बिन (B) एण्टीजन
(C) एण्टीटिपेरिन (D) एण्टीबॉडी ( )

प्रश्न 2. शरीर में रोगों के प्रतिरोधक का कार्य कौन करता है–

(A) प्रोटीन (B) वसा
(C) शर्करा (D) विटामिन्स ( )

प्रश्न 3. मानव शरीर का तापमान फॉरेनहाइट में क्या होता है?

(A) 98.40 F (B) 98.0 F
(C) 98.40 F (D) 100 F ( )

(ब) **दो विकल्पों वाले प्रश्न या सत्य / असत्य प्रश्न (True/False Items)**–इस प्रकार के प्रश्नों में कुछ कथन दिए जाते हैं जो सही भी हो सकते हैं और गलत भी। परीक्षार्थी को यह देखना होता है कि दिया गया कथन सही है या गलत। कथन के सही होने पर उसे हाँ/नहीं, सत्य/असत्य, या ठीक/गलत आदि के माध्यम से उत्तर की जाँच की जाती है। जैसे–

उदाहरण–कोष्ठक में दिए गए विकल्पों में से एक को चुनो–

(i) दिन के समय पौधे ऑक्सीजन गैस छोड़ते हैं। (हाँ/नहीं)
(ii) संघनन और वाष्पीकरण एक ही प्रकार की प्रक्रियाएं हैं। (सत्य/असत्य)
(iii) आदमी के शरीर का सामान्य तापमान 98.4 F होता है। (ठीक/गलत)
(iv) आर्य भट्ट अंतरिक्ष में 19 मार्च, 1975 को छोड़ा गया। (सत्य/असत्य)

(स) **मिलान परीक्षा (Matching Type)**–इस प्रकार के प्रश्नों में दो स्तम्भ होते हैं। बायें स्तम्भ में अधूरे प्रश्न तथा दाएं स्तम्भ में कुछ उत्तर दिए रहते हैं। परीक्षार्थी को सही प्रश्न के लिए सही उत्तर ढूँढ़कर सही जोड़ा (Pair) बनाना होता है। मिलान परीक्षा एक प्रकार से बहु-विकल्प परीक्षा का ही संशोधित रूप है।

उदाहरण 1. कॉलम (अ) में दिए गए पदों का कॉलम (ब) के कथनों से मिलाएँ और दिए गए कोष्ठक में उचित संख्या लिखें।

स्तम्भ (अ)	स्तम्भ (ब)	स्तम्भ (स)
(A) टारटेरिक अम्ल	(1) नींबू	(.....)
(B) सल्फ्यूरिक अम्ल	(2) सिरका	(.....)
(C) साइट्रिक अम्ल	(3) दही	(.....)
(D) एसिटिक अम्ल	(4) इमली	(.....)
(E) नमक का अम्ल	(5) टमाटर	(.....)

उदाहरण 2. स्तम्भ अ औश्र ब में से सही वाक्य बनाकर स्तम्भ (स) में लिखें।

स्तम्भ (अ)	स्तम्भ (ब)	स्तम्भ (स)
(A) चिड़िया	(1) बिल में रहते हैं।	(.....)
(B) शेर	(2) बाड़े में रहती है।	(.....)
(C) दीमक	(3) जंगल में रहता है।	(.....)
(D) गाय	(4) पेड़ पर रहती है।	(.....)

उदाहरण 3.

स्तम्भ (अ)	स्तम्भ (ब)	स्तम्भ (स)
(A) मेंढक	(1) संधिपाद	(..............)
(B) बिच्छू	(2) सरीसृप	(..............)
(C) सर्प	(3) ऐनेलिडा	(..............)
(D) केंचुआ	(4) पॉरीफेरा	(..............)
	(5) उभयचर	(..............)
	(6) एवेज	(..............)

(द) **वर्गीकरण प्रकार (Classification Type)**–इन पदों में कुछ शब्द व वाक्य खण्ड दिए जाते हैं, उनमें से एक शब्द या वाक्य खण्ड दूसरों से नहीं मिलता है। छात्रों को उस शब्द या वाक्य खण्ड को चुनना होता है जो उनसे संबंधित नहीं होता। इनमें ज्ञान का अवबोध महत्वपूर्ण कार्य करता है।

उदाहरण–उन पदों को चुनिए जो समूह से संबंधित नहीं हैं।
उसे कोष्ठक में लिखिए–

1. दूध, संतरा, अंडा, मछली — उत्तर–(संतरा)
2. कबूतर, चमगादड़, तोता, कौआ — उत्तर–(चमगादड़)
3. वायु नली, फेफड़े, जिगर, नसें — उत्तर–(जिगर)
4. कुत्ता, बिल्ली, हाथी, साँप, मेढक — उत्तर–(मेढक)

(ड) **तर्क युक्त समानता प्रश्न (Analogy Type)**–इस प्रकार के प्रश्नों में चार भाग होते हैं और पहले दो भागों में कुछ संबंध होता है। पहले दो भागों में संबंध के आधार पर छात्रों को चौथा भाग लिखना होता है। उदाहरणार्थ–

1. मछली : गिल्ज :: स्तनधारी : .... (फेफड़े)
2. मिट्टी का तेल : तरल :: रबड़ : .... (ठोस)
3. अंगूर : रस :: टमाटर : .... (गूदेदार)
4. प्याज : रूपान्तरित तना :: पपीता .... (फल)

अन्य प्रकार (Miscellaneous or Other Type)–

(1) **अंतर बताने वाले प्रश्न**–इस प्रकार के परीक्षणों में दो वस्तुओं में सरल और स्पष्ट अंतर बताने के लिए कहा जाता है।

प्रश्न 1. पौधों और जीवों में अंतर बताइए।

प्रश्न 2. मांसाहारी और शाकाहारी जीवों में अंतर बताइए।

प्रश्न 3. जन्तु कोशिका व पादप कोशिका में अंतर बताइए।

(2) **मास्टर सूची वाले प्रश्न (Master List Type)**–इस प्रकार प्रश्नों में से एक मास्टर सूची होती है जिसमें उत्तर व विकल्पों की एक सूची दी जाती है। छात्रों को इस मास्टर सूची में से संभावित उत्तर छाँटकर लिखना होता है।

उदाहरण–

मास्टर सूची–गर्मी, वसा, रूधिर गिल्ज,

(1) दौड़ लगाने पर छात्रों को लगती है। (..............)
(2) शरीर में ऑक्सीजन परिवहन का साधन है। (..............)
(3) तेल युक्त भोजन में पाई जाती है। (..............)
(4) मछली में श्वसन के लिए पाए जाते हैं। (..............)

◆◆◆

10. मूल्यांकन के उपकरण एवं विधियाँ बताइए।
(Explain the Tools and techniques of Evaluation.)

उत्तर–मूल्यांकन अनेक उद्देश्यों से किया जाता है। उद्देश्यों के अनुसार उपकरण भी बदलते रहते हैं। मूल्यांकन के अनेक उपकरण हैं। सुविधा के अनुसार उन्हें निम्नांकित चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. परीक्षण उपकरण (Testing procedures)
2. स्वयं-आलेख उपकरण (Self-report techniques)
3. निरीक्षणात्मक उपकरण (Observational techniques)
4. प्रेक्षपी उपकरण (Projective Techniques)

1. परीक्षण उपकरण (Testing procedures)–ये उपकरण परीक्षणों के रूप में होते हैं। परीक्षण व्यक्ति के एक निश्चित समय के व्यवहार का अध्ययन करता है। (A test is merely a series of tasks which are used to measure a sample of a perons's behaviour at a given time)। ये परीक्षण व्यक्ति की रुचि, अभिरुचि, अभिवृत्ति, उपलब्धि एवं व्यक्तित्त्व आदि के मूल्यांकन हेतु प्रयोग किए जाते हैं। ये परीक्षण मौखिक, प्रयोगात्मक अथवा लिखित रूप में हो सकते हैं। ये वस्तुनिष्ठ या निबंधात्मक, शिक्षक निर्मित, साधारण या प्रमापीकृत हो सकते हैं। ये सभी परीक्षण निम्न प्रकार से दिए जा सकते हैं–

(i) लिखित परीक्षा के माध्यम से।
(ii) मौखिक परीक्षा के माध्यम से।
(iii) प्रयोगात्मक परीक्षा के माध्यम से।
(iv) निष्पादन परीक्षा के माध्यम से।
(v) व्यक्ति के द्वारा निर्मित कृतियों के माध्यम से।

2. स्वयं-आलेख उपकरण (Self-report techniques)–प्रत्येक व्यक्ति अपने बारे में काफी सूचनाएँ रखता है। वह अपने बारे में क्या सोचता है? कैसे सोचता है? कब खुश होता है? कौन-सी बातें उसे पीड़ा देती हैं? आदि पहलुओं पर व्यक्ति से मूल्यांकन के लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सूचना प्राप्त की जा सकती है। यह सूचना निम्न प्रकार के उपकरण के प्रयोग द्वारा एकत्रित की जा सकती है–

1. प्रश्नावली (Questionnaire)
2. आत्मकथा (Autobiography)
3. व्यक्तिगत डायरी (Personal diary)
4. वार्ता (Discussion)
5. प्रत्यक्ष प्रश्न (Direct Question)
6. साक्षात्कार (Interview)

3. निरीक्षणात्मक उपकरण (Observational techniques)–व्यक्ति के बारे में अपने निरीक्षण एवं अनुभवों के आधार पर सूचना एकत्रित की जा सकती है। यह निरीक्षण एवं अनुभवों का संकलन वैज्ञानिक विधियों पर आधारित होना चाहिए। निरीक्षण के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरण काम में लाए जाते हैं। इन सब उपकरणों के प्रयोग करने में तथा उनकी व्याख्या करने में काफी सावधानी की आवश्यकता होती है। इन उपकरणों में निम्नांकित उपकरण प्रमुख हैं–

1. एकल तथ्य लेखा (Anecdotal Records)
2. चैक सूची (Check lists)
3. रेटिंग स्केल (Rating scale)
4. समाजमिति तकनीक (Sociometric technique)
5. गैस हू टैक्निक (Guess who technique)

4. प्रक्षेपी उपकरण (Projective Techniques)–इन उपकरणों के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तिगत-सामाजिक समायोजन से संबंधित पक्षों का मूल्यांकन किया जाता है। इनमें व्यक्ति अपनी भावनाओं का प्रक्षेपण करता है और उन प्रक्षेपणों का मूल्यांकन निश्चित सिद्धांतों एवं नियमों के माध्यम से किया जाता है। प्रक्षेपी उपकरण प्रमुख रूप से तीन प्रकार के होते हैं–1. पूर्ण प्रक्षेपी 2. अर्ध प्रक्षेपी 3. अपूर्ण/मुक्त प्रक्षेपी उपकरण।

निम्नांकित उपकरण आजकल काफी प्रयोग में लाए जा रहे हैं–

1. स्याही के धब्बों का प्रत्यक्षीकरण (Perceptions of ink blots)
2. वाक्य-पूर्ति (Sentence-completion)
3. गुड़िया खेल (Doll play)
4. चित्रों की व्याख्या (Interpretation of pictures)

आवश्यकतानुसार इनमें से कोई एक या एक से अधिक उपकरण एवं तकनीकियाँ मूल्यांकन प्रक्रिया में प्रयोग की जा सकती हैं।

मूल्यांकन की उपयोगिता *(Utility of Evaluation)*

मूल्यांकन, मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षा के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। मूल्यांकन से यह मालूम होता है कि व्यक्ति कितना, किस विषय में जानता है? शिक्षक को अपनी कक्षा में कितनी सफलता मिली है? शिक्षक को किन शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए? अपने शिक्षण को किस प्रकार से छात्रों के स्तर पर समायोजित किया जाना चाहिए? इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करके शिक्षक अपने शिक्षण को अधिक प्रभावोत्पादक बना सकता है?

छात्रों को यदि अपनी कमियों और अच्छाइयों का पता चल जाए तो वे अपनी कमियों को दूर करने का प्रयत्न कर सकते हैं। इस प्रकार से मूल्यांकन छात्रों को अच्छा बनने के लिए प्रेरित करता है।

मूल्यांकन के माध्यम से शिक्षक कक्षा के सभी छात्रों की प्रगति के बारे में जानकर उनके अभिभावकों को छात्रों के विषय में सही तथ्य तथा राय दे सकता है। अभिभावक भी अपने बालक की प्रगति के बारे में जानकारी रख सकते हैं।

मूल्यांकन से प्राप्त निष्कर्षों से यह भी पता चल सकता है कि छात्र किस विषय में कमजोर हैं? उनकी समस्याएँ किस प्रकार की हैं? कौन-सी चीज उनकी प्रगति में बाधक है और वह कैसे दूर की जा सकती है? किस प्रकार एकत्रित तथ्यों के माध्यम से निर्देशनकर्ता (Guidance counsellor) छात्रों की अधिक सहायता कर सकता है।

विद्यालय की गतिविधियों में सुधार लाने के लिए भी मूल्यांकन काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। पाठ्यक्रम निर्माण, उपयुक्त परीक्षा प्रणाली, व्यक्तिगत निर्देशन तथा सहगामी क्रियाओं आदि को उपयुक्त योजना बनाने में मूल्यांकन सुदृढ़ पृष्ठभूमि प्रदान कर, उनमें अपेक्षित सुधार लाने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

मूल्यांकन का महत्त्व *(Importance of Evaluation)*

1. मूल्यांकन उद्देश्यों की प्राप्ति की सीमा बताता है कि किस सीमा तक उद्देश्यों की पूर्ति हुई है। दूसरे शब्दों में यह उद्देश्यों के स्पष्टीकरण में सहायक होता है।
2. मूल्यांकन से यह निश्चित किया जाता है कि किन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकी है ताकि Remedial Instruction दिया जा सके।
3. छात्रों का वर्गीकरण एवं स्तरीकरण (Ranking) करने में सहायक है।
4. इससे शिक्षण विधियों, प्रविधियों आदि की उपयोगिता, विशेषता तथा कमजोरी ज्ञात की जाती है।
5. शिक्षण व्यूह रचना में सुधार किया जाता है और उन्हें विकसित किया जाता है।

11. सतत व व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा स्पष्ट करें।
(Explain the concept of continuous and comprehensive evaluation.)

उत्तर–प्रारंभ में शिक्षा की उपलब्धियों को मापने के लिए परीक्षा की योजना का आविर्भाव हुआ और आज परिस्थिति यह है कि परीक्षा में उत्तम स्थान पाने के लिए शिक्षा का नियोजन किया जाता है। वस्तु स्थिति तो यह है कि परीक्षा शिक्षा के लिए है, न कि शिक्षा परीक्षा के लिए। सत्य यह है कि परीक्षा का इतना महत्त्व शिक्षा के क्षेत्र की अधिकतम विकृतियों का मूल है, परंतु परीक्षा के अस्तित्त्व को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। अब तो यही उचित होगा कि उसे यथास्थिति के अनुरूप गौण स्थान पर रखने की व्यवस्था की जाए।

सन् 1960 से पहले के, परीक्षाओं पर प्रकाशित साहित्य, भारतीय स्कूल और कॉलेजों में प्रचलित परीक्षा पद्धति की कमियों को मुख्यतः 4 वर्गों में विभाजित किया जाता था–

1. स्मरण शक्ति पर अतिशय बल,
2. मापन में व्यक्तिनिष्ठता,
3. प्रश्नों का पाठ्य वस्तु के अंश मात्र पर आधारित होना,
4. अन्य व्यवस्था संबंधी बातें।

पिछले दशक में इन कमियों को दूर करने के लिए लगभग सभी बोर्ड और यूनिवर्सिटीज एवं संस्थानों ने गंभीर प्रयास किए। निश्चय ही कुछ संस्थाएँ व प्रांत इस दिशा में कुछ अधिक कर पाए–अन्य कुछ अपेक्षाकृत कम। इन प्रयासों के फलस्वरूप लिखित परीक्षा-पत्रों के निर्माण में अब निबंधात्मक प्रश्नों के साथ ही वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का भी समावेश हुआ है, लेकिन इस प्रकार के प्रश्नों को अभी भी 10 से 25 प्रतिशत तक ही महत्त्व मिला है, लेकिन यहाँ एक मौलिक प्रश्न उठता है कि लिखित परीक्षा में किस अनुपात में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का समावेश किया जाए और किस प्रकार स्मरण शक्ति पर अतिशय बल की समस्या का उपयुक्त समाधान हो सके। छात्र व्यवहार के विभिन्न आयामों को स्पर्श करने और जांचने के लिए लिखित परीक्षा की क्रिया-विधि में क्या जोड़ना होगा और उसकी परिधि के पार क्या जोड़ना होगा–यह प्रश्न प्रमुख है।

लिखित परीक्षा पर प्राप्त साहित्य में व्यक्तिनिष्ठता के तीन आयामों का विवेचन किया गया है–

1. प्रश्नपत्र निर्माण
2. उत्तरों को लिखना।
3. उत्तरों को जांचना।

प्रश्न पत्रों के निर्माण में प्रमुख रूप से बोर्ड और यूनिवर्सिटी संस्थाओं को नेतृत्व प्रदान किया है और परिणामस्वरूप उनका सामान्य स्तर अधिक सहायक और परिनिष्ठ बना है, उनके जांचने में भी उस वस्तुनिष्ठ और विश्लेषणात्मक दृष्टि से अधिक सहायता मिलती है।

परीक्षा के पाठ्यवस्तु के अंशमात्र पर आधारित होने की समस्या हल करने के लिए प्रत्येक इकाई पर प्रश्न पूछने का नियम बनाया गया और छूट व चयन की व्यवस्था प्रत्येक इकाई के अंदर से ही की गई। इस प्रकार कोई भी छात्र कुछ इकाइयों को सामान्यतः छोड़ नहीं पाता। यह व्यवस्था बहुत सीमा तक परिवर्तन के प्रथम सोपान में संतोषजनक है। इस व्यवस्था के आगे एक उपयुक्त सोपान में छोटे उत्तर वाले प्रश्नों का मौखिक परीक्षा आदि में समावेश कर, अधिक व्यावहारिक बनाया जा सकता है।

अन्य व्यवस्था संबंधी बातें यद्यपि अपनी प्रकृति में शैक्षिक नहीं हैं, परंतु बहुत से शैक्षिक दृष्टि से सम्पन्न विचार भी क्रियान्वित करते समय व्यवस्था के अभाव में बेकार हो जाते हैं। इस दिशा में प्रश्न पत्रों को दो भागों—पहला वस्तुनिष्ठ और दूसरा निबंधात्मक में बाँट लेना एक कारगर पद्धति है। परंतु इससे छात्रों के अध्ययन के प्रति अभिप्रेरणा में कोई विशेष अंतर नहीं आता। इस प्रकार, आज की संशोधित परीक्षा-प्रणाली भी अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर पा रही है और सारांश रूप में कहा जा सकता है कि यह निम्न दोषों से पूर्ण है।

1. वस्तुनिष्ठता का अभाव—प्रचलित परीक्षा की जांच प्रक्रिया में वस्तुनिष्ठता का अभाव है। परीक्षकों द्वारा उत्तरों की जांच करने में व्यक्तिगत रुचियों, मनोदशा तथा भावनाओं का गहरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि प्रश्न ऐसे होते हैं जिनके एक से अधिक सही उत्तर लिखे जा सकते हैं।

परीक्षा के विभिन्न पक्षों पर शोधकार्य में देखा गया है कि निबंधात्मक परीक्षा में व्यक्तिनिष्ठता है। विभिन्न परीक्षकों के जांचने पर एक ही उत्तर-पुस्तिका के प्राप्तांकों में कई बार बहुत अंतर पाया गया। यहाँ तक भी देखा गया है कि अगर एक ही उत्तर पुस्तिका एक ही परीक्षक द्वारा अलग-अलग समय पर जांची जाए, तो अंकों में बहुत भिन्नता आएगी।

2. पूरे पाठ्यक्रम समावेश का अभाव—प्रायः चार या पाँच से अधिक निबंधात्मक प्रश्नों का उत्तर तीन घंटे की अवधि में लिखना संभव नहीं हो पाता, जिससे छात्रों को पूरा पाठ्यक्रम तैयार करने के स्थान पर अंशमात्र तक ही सीमित रहने की प्रेरणा मिलती है।

3. अविश्वसनीयता—एक विश्वसनीय परीक्षा पत्र वह है जिसमें सदैव छात्र को एक से अंक प्राप्त हो। निबंधात्मक परीक्षा के कम विश्वसनीय होने को निम्न कारणों से जोड़ा जा सकता है—

(i) प्रश्नों का गठन,

(ii) छात्रों की मानसिक एवं भौतिक अवस्था का भी प्रभाव पड़ता है। यदि किसी छात्र को दो समरूप परीक्षाएँ विभिन्न दिनों में दी जाए तो अंकों में अंतर होगा।

(iii) अंक प्रदान करने की कोई वस्तुनिष्ठ विधि न होकर व्यक्तिनिष्ठ होती है।

4. वैधता का अभाव—वैधता से तात्पर्य है कि परीक्षा को उसी योग्यता अथवा उद्देश्य का मापन करना चाहिए जिसके हेतु उसे बनाया गया है। निबंधात्मक प्रश्न-पत्रों द्वारा विज्ञान के ज्ञान का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने की अपेक्षा भाषा संबंधी ज्ञान, शैली, लिखने की गति आदि से भी छात्र के प्राप्तांक प्रभावित होते हैं।

इन प्रमुख पक्षों के अतिरिक्त कई सामान्य बिन्दु और भी हैं।

5. सामान्य प्रश्न-पत्र इस तरह के होते हैं कि वह छात्रों की तर्क, कल्पनाशक्ति, विचार क्षमता, निरीक्षण व निर्णय लेने की शक्तियों को न जांचकर उनको रटने की शक्ति को जांचते हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली से छात्रों को पुस्तकीय ज्ञान तो होता है, परंतु वह दैनिक जीवन में उस स्थान का प्रयोग ठीक से नहीं कर पाता, क्योंकि हमारी परीक्षा-प्रणाली में पास होने के लिए व्यवहारात्मक और क्रियात्मक ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं है।

6. हमारी परीक्षा प्रणाली की त्रुटियों का कुप्रभाव हमारे पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधियों, विद्यालय की क्रियाओं तथा अनुशासन पर पड़ता है। छात्रों का एकमात्र उद्देश्य है—परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना। अध्यापकों का एकमात्र उद्देश्य है—अच्छे परिणाम लाना। इसके कारण हमारी शिक्षा प्रणाली, परीक्षा-प्रणाली के बोझ तले दब सी गई है। ये परीक्षाएँ छात्रों के शरीरिक, मानसिक व नैतिक पक्षों के संतुलित विकास में बाधा डालती हैं।

प्रश्न 4. मूल्यांकन की प्रक्रिया पर टिप्पणी कीजिए।
(Write a note on the "Process of Evaluation".)

उत्तर– **मूल्यांकन की प्रक्रिया (Evaluation Process)**–मूल्यांकन एक जटिल प्रक्रिया है जिसके तीन भाग होते हैं। ये तीनों भाग निम्नांकित रेखाचित्र से स्पष्ट किए ज सकते हैं–

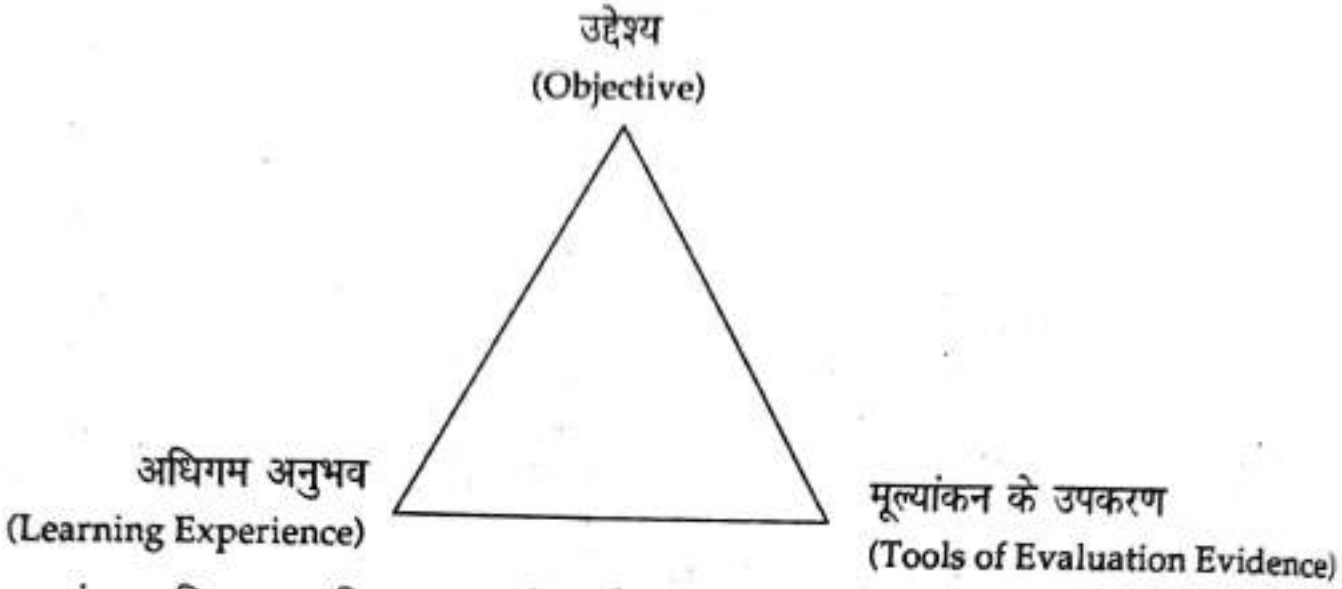

मूल्यांकन प्रक्रिया एक त्रिभुजाकार प्रक्रिया है जिसमें उद्देश्य, अधिगम तथा मूल्यांकन के उपकरण आते हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है–उद्देश्य। कुछ विद्वानों ने मूल्यांकन का तीसरा बिन्दु व्यवहार परिवर्तन (Behaviour Change) भी माना जाता है।

मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपान (Steps of Evaluation Process)–

1. **उद्देश्यों का निर्धारण एवं परिभाषीकरण (Identifying and Defining Objectives)**–उद्देश्यों को निर्धारित करने से पूर्व बालक, समाज, विषय-वस्तु की प्रक्रिया तथा शैक्षिक स्तर का पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिए। इन सभी तथ्यों को देखते हुए मूल्यांकन के उद्देश्यों को भली-भांति स्पष्ट रूप से व्यवहार परिवर्तन के रूप में निर्धारित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

   इन परिवर्तनों के आने पर बालक के व्यवहार में किस तरह के परिवर्तन की आशा है। अतः उद्देश्यों के निर्धारण एवं परिभाषा करते समय इनके निर्धारण एवं परिभाषित करने की विधि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही मूल्यांकन की ओर बढ़ना चाहिए।
2. **अधिगम अनुभव की योजना बनाना (Planning Learning Experience)**–जब उद्देश्यों का निर्धारण हो जाता है तब अधिगम अनुभवों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अधिगम अनुभव से तात्पर्य एक ऐसी परिस्थिति के निर्माण से है जिसके अन्तर्गत बालक

वांछित प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकता है। मूल्यांकनकर्ता को अधिगम अनुभव निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर बनाने चाहिए तथा उसी प्रकार के अनुभवों का चुनाव एवं निर्माण करना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजना बनानी पड़ती है। योजना में बालक का स्तर, लिंग, परिवेश, पृष्ठभूमि आदि कारकों का ध्यान रखते हैं।

3. **विभिन्न उपकरणों के माध्यम से साक्षियाँ प्रदान करना (Providing Evidence Various Tools of Evaluation)**–मूल्यांकनकर्ता उद्देश्य एवं अधिगम अनुभव की योजना बनाने के पश्चात् उपयुक्त उपकरणों के चयन अथवा विकास में लग जाता है तथा इन उपकरणों को प्रयोग करते हुए वह साक्षियाँ एकत्रित करता है जिनके आधार पर प्रत्याशित व्यवहार का मूल्यांकन करने में समर्थ होता है।

4. **व्यवहार परिवर्तन के क्षेत्र (Areas of Change of Behaviour)**–मूल्यांकन के माध्यम से व्यवहार में परिवर्तन आते हैं। व्यवहार परिवर्तन के सभी क्षेत्रों को प्रमुख रूप से तीन पक्षों में विभाजित किा जाता है।

व्यवहार परिवर्तन
(Changing in Behaviour)

1. ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Aspects) ज्ञानात्मक पक्ष में 6 स्तर आते हैं–	1. भावात्मक पक्ष (Affective Aspects) मनोवृत्तियों से संबंधित 6 स्तर आते हैं–	1. क्रियात्मक पक्ष (Conative Aspects) शिक्षण प्रक्रिया से संबंधित 6 स्तर आते हैं–
1. प्रत्यास्मरण	1. आग्रण	1. उत्तेजन
2. अभिज्ञान	2. प्रतिक्रिया	2. कार्यवाही
3. बोध	3. अनुमूल्य	3. नियंत्रण
4. प्रयोग	4. विचारण	4. समायोजन
5. विश्लेषण	5. व्यवस्थापन	5. स्वभावीकरण

प्रश्न 5. मूल्यांकन के साधन कौन-से होते हैं?
(What are the main components of evaluation?)

उत्तर– मूल्यांकन के साधन (Components of Evaluation)–सामान्यतः मूल्यांकन के निम्न साधन होते हैं–

1. **लिखित परीक्षा**–यह परीक्षा का सर्वाधिक प्रचलित रूप है। इसमें छात्रों को परीक्षा निर्धारित कॉपी में लिखकर देनी होती है।
2. **मौखिक परीक्षा**–इसमें छात्र से व्यक्तिगत रूप से छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाते हैं।
3. **प्रायोगिक परीक्षा**–इस परीक्षा का प्रयोग मुख्यतः विज्ञान विषय में होता है, यह छात्रों के कौशल का मापन करती है।
4. **प्रश्नावली**–इसमें कुछ विशेष प्रश्नों को छात्रों से उनकी रुचि व ज्ञान आदि का पता लगाने के लिए क्रमबद्ध होता है।
5. **साक्षात्कार**–यह भी मौखिक मूल्यांकन का ही एक प्रकार है। इसमें बालकों की रुचि व्यक्तित्व आदि का परीक्षण किया जाता है।

6. **निदानिक परीक्षा**–इसका उद्देश्य छात्रों की कमजोरियों का पता करके उनका निदान करना होता है।
7. **निरीक्षण**–इसमें छात्रों का निरीक्षण किया जाता है, जिसमें उनके कार्य करने का तरीका संवेगात्मक स्थिरता आदि का पता लगाया जाता है।
8. **रिकार्ड**–इस प्रकार के साधनों में डायरी, पूर्व प्रगति पत्र, आलेख पत्र, बालकों की डायरी आदि सूचनाओं के सोत होते हैं।

मूल्यांकन की विशेषताएँ (Characteristics of Evaluation)–

1. मूल्यांकन एक निरंतर चलने की प्रक्रिया है, जिसमें पूरे साल भर अनुमान लगाया जाता है।
2. मूल्यांकन सदैव विस्तृत होता है।
3. मूल्यांकन एक सहकारी (Co-operative Process) प्रक्रिया है अर्थात् मूल्यांकन के लिए अध्यापक, बच्चे, माता-पिता, संस्था आदि सभी का सहयोग होता है।
4. मूल्यांकन कक्षा व विद्यालय तक ही सीमित नहीं होता, अपितु कक्षा व विद्यालय के बाहर भी होता है।
5. मूल्यांकन अध्यापक और छात्रों को उनकी उपलब्धियों के बारे में पृष्ठ पोषण प्रदान करवाकर शिक्षण प्रक्रिया में सुधार लाने का उद्देश्य रखता है, जो शिक्षण प्रशिक्षण के दो मुख्य अंग हैं।

मूल्यांकन की आवश्यकता (Need of Evaluation)–

1. छात्रों की कठिनाइयों, समस्याओं तथा कमजोरियों का मूल्यांकन खोज कर उनकी जाँच की और शिक्षा का ध्यान आकर्षित करता है।
2. परीक्षाएं शिक्षण विधियों की कार्य साधकता तथा निर्धारण एवं पाठ्य-वस्तु के चयन एवं संगठन में उपयोगी है।
3. मूल्यांकन छात्रों में उत्तेजना प्रदान कर पढ़ाने के लिए प्रेरणा देता है।
4. मूल्यांकन में शिक्षक को मार्गदर्शन मिलता है।
5. मूल्यांकन तन तथा मन को अनुशासित करने में सहायता देता है।
6. शिक्षण के उद्देश्यों को स्पष्ट करता है।
7. जीव विज्ञान के क्षेत्र में छात्रों की पूर्ण सफलता के आधार पर वर्गीकरण करने के लिए मूल्यांकन आवश्यक है।